	बजेट	संशोधन
आफ़िस के कार्यकर्ता	१०४६)	११३०)
छपाई	३२००)	२३००)
पारितोषिक	१९०)	९०)
पुस्तकालय	५००)	८००)
पृथ्वीराजरासो	१२००)	६१०)
स्थायी कोश	६६०)	७००)
पुस्तकों की खोज	५००)	१०००)
नागरी-प्रचार	५००)	५५०)
डाकव्यय	५००)	७६०)
पुस्तकों के लिये पुरस्कार	३५०)	५०५)
फुटकर व्यय	३२०)	५७०)
बनारस बंक को देना	५८३६।।।)७	५६८७।।।)७
ब्याज	०	५०)
	१४८०२।।।)७	१४८०२।।।)७

(३) आगामी वर्ष के लिये निम्नलिखित बजेट स्वीकृत हुआ ।

आमदनी

७४२३-)८	गत वर्ष की बचत
१२०।≡)।	अमानतखाते की बचत
३०००)	सभासदों का चन्दा
१०००)	पुस्तकों की बिक्री
११५०)	पुस्तकों की खोज
८००)	पृथ्वीराजरासो की बिक्री
३४००)	स्थायी कोश
२५)	नागरी-प्रचार
३००)	फुटकर
५०)	पारितोषिक
६५०)	पुस्तकालय
२५००)	हिन्दीभाषा का कोश
१५)	साहित्य-सम्मेलन के कार्य-विवरण की बिक्री
२०४३३॥)११	

खर्च

१२००)	आफ़िस के कार्यकर्ता
२४५०)	छपाई
१००)	पारितोषिक
६२६)	पुस्तकालय
७५०)	पृथ्वीराजरासो
२००)	स्थायी कोश
९००)	पुस्तकों की खोज
१६०)	नागरी-प्रचार
६००)	डाकव्यय
३००)	पुस्तकों के लिये पुरस्कार
३७९)	फुटकर व्यय
८२४८-)१/२	हिन्दी-कोश
३१९५)	बनारस बंक का देना
१९१०८-)१/२	

व्यय का ब्योरा

छपाई

पत्रिका की १३ संख्याएं	९५०)
ग्रन्थमाला की ५ संख्याएं	६२५)
लेखमाला	४५०)
बीसवें वर्ष का कार्य-विवरण	१५०)
फुटकर	२७५)
	२४५०)

पुस्तकालय

पुस्तकाध्यक्ष	१४४)
चपरासी	६६)
दफ़्री	१३२)
दफ़्री का लड़का	२६)
पंखाकुली	१८)
पुस्तकें	२००)
अलमारी	३०)
	६२६)

कार्यकर्ताओं का वेतन

सहायक मंत्री	६००)
क्लार्क १	१८०)
क्लार्क २	१२०)
चपरासी १	८४)
चपरासी २	६६)
मेहतर	१२)
पंखाकुली	१४)
माली	२४)
दफ़री	६६)
फुटकर	४)
	१२००)

(४) हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के प्रधान मंत्री का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने आगामी सम्मेलन के सभापति के चुनाव के लिये ५ सज्जनों के नाम निर्वाचित करने के लिये लिखा था। निश्चय हुआ कि इसके लिये निम्न लिखित सज्जनों के नाम निर्वाचित किए जांय अर्थात् बाबू श्यामसुन्दरदास बी० ए०, पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी, पण्डित श्यामविहारी मिश्र एम० ए०, लाला मुंशीराम और बाबू जगन्नाथप्रसाद (भानु कवि)।

(५) बाबू भगवानदास एम० ए० और बाबू गौरीशंकर-प्रसाद बी० ए० एलएल० बी० का यह प्रस्ताव उपस्थित किया गया कि बाबू श्यामसुन्दरदासजी से प्रार्थना की जाय कि वे हिन्दी-शब्दसागर के सम्पादन में अपना पूरा समय लगा कर उस कार्य को करें और कम से कम १००) रु० का मासिक आनरेरियम कृपापूर्वक स्वीकार करें। साथ ही इस सम्बन्ध में बाबू श्यामसुन्दरदासजी का पत्र भी उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने इसे अस्वीकार किया था। (यहां पर बाबू श्यामसुन्दरदासजी चले गए और पण्डित रामनारायण मिश्र ने सभापति का आसन ग्रहण किया)।

निश्चय हुआ कि बाबू श्यामसुन्दरदासजी से निवेदन किया जाय कि यह प्रस्ताव आनरेरियम के लिये है, वेतन के लिये नहीं। सभा की सम्मति में वे इस आनरेरियम को स्वीकार करने से काशी में रह कर अन्य सब कार्यों से ख़ाली रह कर अपना पूरा समय कोश के कार्य में दे सकेंगे जिससे सभा को बहुत बड़ा लाभ होगा। बाबू साहब को वे सब अधिकार पूर्णतया प्राप्त रहेंगे जो इस समय उन्हें प्राप्त हैं और वे इस सभा की प्रबन्धकारिणी समिति आदि के सभासद उसी प्रकार रहेंगे। बाबू साहब से प्रार्थना की जाय कि जिस प्रकार अब तक वे सभा से आन्तरिक हित रखते आए हैं उसी प्रकार सभा के लाभ की ओर ध्यान कर इस प्रस्ताव को स्वीकार करें जिसमें कोश का कार्य भली भांति शीघ्र तथा निर्विघ्न समाप्त हो। साथही यह भी निश्चय हुआ कि मंत्री सर्व-साधारण की सूचना के लिये एक पत्र प्रकाशित करदें जिसमें यह भली भांति प्रकट करदें कि सभा ने बाबू श्याम-सुन्दरदासजी को उनकी इच्छा के विरुद्ध किस प्रकार आनरे-रियम लेने के लिये बाध्य किया है और इससे सभा का कितना कुछ हित साधन हो सकेगा।

(६) बाबू इन्द्रजी भगवानजी का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने लिखा था कि यदि उन्हें छः आने रुपये के हिसाब से कमीशन दिया जाय तो वे अन्त्येष्टिदीपिका और गोभिलीय गृह्यकर्मप्रकाशिका की जितनी प्रतियां सभा के पास हैं उन सब को नगद मूल्य पर ले लेंगे। निश्चय हुआ कि यह स्वीकार किया जाय।

(७) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई।

—:०:—

प्रबन्धकारिणी-समिति

शनिवार तारीख १२ जुलाई १०१३—सन्ध्या के छः बजे (१) बाबू गौरीशंकरप्रसाद के प्रस्ताव तथा बाबू बाल-मुकुन्द वर्मा के अनुमोदन पर बाबू शिवकुमारसिंह सभापति चुने गए।

(२) सभा के बीसवें वर्ष का कार्य्य-विवरण उपस्थित किया गया और आवश्यक संशोधन के उपरान्त स्वीकृत हुआ।

(३) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई।

—:०:—

वार्षिक अधिवेशन।

सोमवार तारीख ४ अगस्त १९१३—सन्ध्या के ५½ बजे स्थान सभाभवन।

(१) पंडित रामनारायण मिश्र के प्रस्ताव तथा बाबू जगन्मोहन वर्म्मा के अनुमोदन पर डाक्टर प्रियवरण सभापति चुने गए।

(२) पंडित श्यामविहारीमिश्र एम० ए० का तार उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने आज के अधिवेशन में अपनी अनुपस्थिति पर दुःख प्रकट किया था। निश्चय हुआ कि पण्डित श्यामविहारी मिश्रजी को इसके लिये धन्यवाद दिया जाय।

(३) प्रबन्धकारिणी-समिति के बीसवें वर्ष का कार्य्य-विवरण उपस्थित किया गया और स्वीकृत हुआ।

(४) सभा के सभापति पण्डित श्यामविहारी मिश्रजी का व्याख्यान पढ़ा गया जिस पर सभा ने बड़ा हर्ष प्रकट किया।

(५) बाबू वेणीप्रसाद के प्रस्ताव तथा पण्डित सर्य्यू-नारायण त्रिपाठी के अनुमोदन पर सर्वसम्मति से निश्चय हुआ कि बाबू गौरीशंकरप्रसादजी ने कृपापूर्वक मंत्री का पद स्वीकार कर अपना जो बहुमूल्य समय सभा के कार्यों में लगाया और उन्होंने जिस योग्यता और उत्साह से कार्य्य सम्पादन किया है उसके लिये उन्हें धन्यवाद दिया जाय।

(६) प्रबन्धकारिणी-समिति का यह प्रस्ताव उपस्थित किया गया कि सभा के ११ वें नियम में जो दो उपमंत्री के चुने जाने का विधान है उसके स्थान पर एक ही उपमंत्री चुना जाया करे।

निश्चय हुआ कि यह स्वीकार किया जाय।

(७) पदाधिकारियों और प्रबन्धकारिणी-समिति के सभासदों के चुनाव के लिये उपस्थित सभासदों में निर्वाचन-पत्र बांटे गये और उनका परिणाम जांचने के लिए सभापति ने बाबू केशवदास और पण्डित निष्कामेश्वर मिश्रजी को नियत किया।

(८) सन् १९१२–१३ के आय-व्यय के हिसाब के सहित अगामी वर्ष के लिये प्रबन्धकारिणी-समिति द्वारा स्वीकृत बजेट उपस्थित किया गया।

बाबू वेणीप्रसाद के प्रस्ताव तथा पण्डित रामचन्द्र शुक्ल के अनुमोदन पर सर्वसम्मति से निश्चय हुआ कि यह स्वीकार किया जाय।

(९) सर्वसम्मति से निश्चय हुआ कि श्रीमान् महाराजा साहब छत्रपुर, श्रीमान् महाराजा साहब अलवर और श्रीमान् काशीनरेश हिन्दीभाषा और इस सभा के बड़े सहायकों में हैं अतः ये नृपतिगण इस सभा के संरक्षक चुने जांय।

(१०) निश्चय हुआ कि जिन महाशयों को सभा ने इस वर्ष मेडल देना निश्चित किया है उन्हें वार्षिकोत्सव पर मेडल दिए जांय।

(११) प्रबन्धकारिणी-समिति का यह प्रस्ताव उपस्थित किया गया कि बोर्ड आफ़ ट्रस्टीज़ की अब कोई आवश्यकता नहीं रही है और उसका सब काम वास्तव में प्रबन्धकारिणी समिति द्वारा होता है अतएव वह बोर्ड उठा दिया जाय और उस सम्बन्ध के नियम ४९–६४ के स्थान पर नए नियम स्वीकार किये जांय।

निश्चय हुआ कि सभा के नियम ६३ के अनुसार पहिले यह प्रस्ताव बोर्ड आफ़ ट्रस्टीज़ के सम्मुख उपस्थित किया जाय।

(१२) निर्वाचन पत्रों का निम्नलिखित परिणाम सूचनार्थ उपस्थित किया गया—

सभापति

पण्डित श्यामविहारी मिश्र एम० ए०,

उपसभापति

बाबू श्यामसुन्दरदास बी० ए०

रेवरेंड ई० ग्रीव्स

मंत्री

बाबू गौरीशंकरप्रसाद बी० ए०, एलएल० बी०

उपमंत्री

बाबू बालमुकुन्द वर्म्मा

प्रबन्धकारिणी-समिति के सभासद्

बंगाल से—बाबू काशीप्रसाद जायसवाल

बिहार से—पण्डित रामावतार पांडेय एम० ए०

पंजाब से—राय मूलराज

काशी से—बाबू माधवप्रसाद

पण्डित देवीप्रसाद उपाध्याय

बाबू जयशंकरप्रसाद

राय शिवप्रसाद

(१३) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई।

—:०:—

साधारण सभा

शनिवार ता० ३० अगस्त १९१३—सन्ध्या के ५½ बजे

स्थान-सभाभवन

(१) तारीख़ २८ जून के साधारण अधिवेशन और

४ अगस्त के वार्षिक अधिवेशन के कार्य्यविवरण उपस्थित किए गए और स्वीकृत हुए ।

(२) प्रबन्धकारिणी-समिति के ता० ३१ मई १९१३ और २८ जून १९१३ के कार्य्यविवरण सूचनार्थ पढ़े गए ।

(३) सभासद् होने के लिये निम्नलिखित सज्जनों के फ़ार्म उपस्थित किए गए और स्वीकृत हुए—(१) बाबू गुरुप्रसाद बी० एस०सी०, ला कालेज, इलाहाबाद १॥) (२) पण्डित कालूराम त्रिवेदी, ठि० रेखाराम रामेश्वर, ससराम १॥) (३) बाबू कौशलानन्द सहाय बी० ए०, एम० बी० प्रोफ़ेसर, हिन्दू-कालेज, काशी १॥) (४) बाबू रामकुमार साहु, रईस और आनरेरी मजिस्ट्रेट, ठाकुरद्वारा, ज़िला मुरादाबाद १२) (५) बाबू शिवप्रसाद सिंह, चेतगंज, काशी १॥) (६) पण्डित विद्याधर मोतीराम शर्म्मा, ठि० सेठ वंशीलालजी की दुकान, हथरुया, बरार ३) (७) बाबू गोवर्द्धनदास, ठि० मिसर्स गोवर्द्धनदास एण्ड को०, लाहोर ५) (८) बाबू राधेश्याम, ठठेरी बाज़ार, काशी ३) (९) बाबू सीताराम, ठठेरी बाज़ार, काशी ३) (१०) पण्डित जयदेव शास्त्री, प्रधानाध्यापक, संस्कृत पाठशाला, परस्पुर, गोंडा ३) (११) बाबू चिरंजीलाल, मेनेजर, सेठ अमृतलाल गुलज़ारीलाल जिनिंग फ़ेक्टरी, फ़ीरोज़ाबाद १॥) (१२) पण्डित दुर्गाप्रसाद गौड़ ज़मींदार, महल्ला अलीगंज, बांदा १॥) (१३) बाबू शूरजी वल्लभदास वर्म्मा, पोस्ट नं० ३, बम्बई ५) (१४) पण्डित रघुनन्दन शर्म्मा, फ़ारेस्ट आफ़िसर, सरगूज़ा स्टेट ५) (१५) बाबू प्रियानाथ बसाक, ट्रेनिंग कालेज, जबलपुर १॥) (१६) बाबू मन्नालाल, रायपुर होस्टल, गवर्नमेंट कालेज, जबलपुर १॥) (१७) पण्डित बेनीप्रसाद तिवारी, गवर्नमेंट कालेज, जबलपुर १॥) (१८) बाबु बैजनाथ प्रसाद, गवर्नमेण्ट कालेज बोर्डिङ्ग, जबलपुर १॥) (१९) बाबू जगन्नाथ प्रसाद मालवीय, गवर्नमेण्ट कालेज, जबलपुर १॥) (२०) लाला रुद्रनाथसिंह, सभापति, हिन्दीहितैषिणी सभा, धेनुगाबा पो० बेलवा जि० बस्ती ५) (२१) बाबु हरिबक्स मरोदिया, ११३ मनोहरदास का कटरा, बड़ा बाज़ार, कलकत्ता ५) (२२) बाबू गिरिजाप्रसाद, हनुमान फाटक, काशी १॥)

(४) निम्नलिखित सभासदों के इस्तीफे उपस्थित किए गए और स्वीकृत हुए (१) पंडित साधुशरण पांडे, मुदरिंस, शिवपुर दियर पो० भरसर जि० बलिया, (२) पंडित सत्यदेव राम त्रिपाठी, ग्राम कोल्हुआ पो० हरिहर पुर, ज़ि० बस्ती, (३) बाबू लक्ष्मणप्रसाद वकील, लखनऊ, (४) पंडित कृष्णानन्द, अध्यापक, दुरावल पो० शाहगंज, जि० मिर्ज़ापुर, (५) पंडित गोपीनाथ तिवारी, हेड मास्टर, मिडिल स्कूल बगहा, जि० चम्पारन, (६) बाबू शिवनन्दनप्रसाद, सेकेण्ड मास्टर, मिडिल स्कूल, बगहा, जि० चम्पारन, (७) बाबू जगपति राय, ४९ अवधगर्बी, काशी ।

(५) निम्नलिखित पुस्तकें धन्यवादपूर्वक स्वीकृत हुईं—

संयुक्त प्रदेश की गवर्मेण्ट ।

General Report on Public Instruction for the year ending 31st March 1912. Sacred Books of the Hindus Vol. V, VII and XII.

बाबू भगवानदास हालना, हाथरस
  रामायण ' पीयूषधारा टीका सहित '

पण्डित रामेश्वरदत्त जोषी, बीबी हटिया, काशी
  नसीरुद्दीन हैदर

पण्डित दुर्गाप्रसाद रघुनाथ प्रसाद खेवरिया, सागर
  सेलिमा बेगम

बाबू हरिहरनाथ बी० ए०, काशी
  तुलसी शिक्षावली

पण्डित गुरुसेवक उपाध्याय बी० ए०, डिपटी कलेक्टर, गोरखपुर
  जातिसुधार

बाबू श्यामलाल, जनरल पब्लिशिंग कम्पनी, मेरठ
  सलाइयों की बुनावटें

पण्डित इन्द्रमल शर्म्मा, हाकिम, नागोर, मारवाड़
  श्रीलघुस्तवराज

पण्डित जगन्नाथप्रसाद शुक्ल, दारागंज, प्रयाग
  भारत में मन्दाग्नि

मंत्री, जीवदयाविभाग, भारतजैन महामण्डल, ललितपुर
  अहिंसा २ प्रति

पण्डित सूर्यदत्त शर्म्मा मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल विद्यालय होशंगाबाद
  धर्मोपदेशरत्नमाला

पण्डित विश्वनाथप्रसाद दुबे, मास्टर हिं० मि० स्कूल, आरंग
एडवर्ड काव्य
ब्रह्मचारी शीतलप्रसाद जी, जैनमित्र कार्यालय, हीराबाग़, गिरगांव, बम्बई,
अनुभवानन्द
ठाकुर रामहर्षसिंह वर्म्मा, मंत्री आर्यसमाज, कटावाँ, ज़िला सुलतांपुर
क्षत्रियसभासंजीवनी
बाबू कन्हैयालाल, जौहरी टोला, काशी
मधुपलतिका प्रथम भाग, कनककुसुम
पण्डित रामलग्न त्रिपाठी, ब्रह्मपुर, गोरखपुर
शिवनिर्माल्यग्रहणमीमांसा
बाबू शिवप्रसाद खरे, डिस्ट्रिक् ट्रैफ़िक सुपरेण्टेण्डेण्ट का दफ़्र-फ़ैज़ाबाद
आत्मबोध
बाबू राजेन्द्रनाथ मित्र, हिन्दी स्कूल, भवानीपुर, कलकत्ता
ज्ञानोदय
भट्ट श्रीबलभद्र शर्म्मा, बड़ा मन्दिर, भूलेश्वर, बम्बई
सिद्धान्तसिद्धापगा
बाबू तेजूमल मुरलीधर कनल, उत्तम खैराती भंडार, अहमदाबाद
हमारे देश की प्राचीन उन्नति
स्वामी सच्चिदानन्द जी, काशी
आर्यसमाज और सनातनियों में जो विवाद हुआ करता है उसका समाधान
श्रीमती विद्यावती देवी, ठी० बाबू कालिन्दीपतिराय, कमाल की इमली, काशी
विद्यापुकार
डिस्ट्रिक् बोर्ड, बनारस
Annual Administration Report for 1912-13.
बाबू हरिदास माणिक, मिश्र पोखरा, काशी
मेवाड़ का उद्धारकर्ता
महाराणा सांगा और बाबर
भारत की प्राचीन झलक दूसरा भाग
माणिक आदर्श अर्थात् राजपूतों की बहादुरी पहिला भाग।
बाबू ब्रजचन्द्र, चौखम्भा, काशी।
Catalogue of the Archeological Museum at Mathura.
गुजरात वर्नाक्युलर सोसायटी, बम्बई
ब्रिटिश हिन्दुस्तान नो आर्थिक इतिहास द्वितीय भाग (गुजराती)
लंडार ना काल्पनिक संवाद द्वितीय भाग ,,
सामाजिक सेवा ना सन्मार्ग ,,
अरिस्टोटल नो नीति-शास्त्र ,,
अकबर ,,
मलेरिया ताव ,,
करक्सनर ने उदारता ,,
पंडित बटुकप्रसाद मिश्र, सराय गोवर्द्धन, काशी
ब्राह्मणोत्पत्तिभास्कर
विश्वेश्वर फ़ार्मेसी, काशी
संतानरक्षा
बाबू शिवप्रसाद गुप्त, काशी
कर्मवीर गान्धी २ प्रति
पंडित भीमसेन शर्म्मा, महाविद्यालय, ज्वालापुर, सहारनपुर
संस्कारचन्द्रिका
पंडित शंभूदयाल तिवारी, उदयपुर
व्याधिमर्दनामृत शिवस्तोत्रकाव्यम्
भारत की गवर्नमेन्ट
Fauna of British India Vol III, Fauna Diptera Nomotocera excluding Chironomide and Gulidide
पंडित गुरुदयाल त्रिपाठी वकील, रायबरेली
सांवले रामवंशचरित्र
जैनमित्रकार्यालय, बम्बई
नित्यनेम पूजा भाषा द्वितीय भाग
खरीदी गई तथा परिवर्तन में प्राप्त
नारी उपदेश, उत्तररामचरित छाया, लक्ष्मी बहू, प्रेमलता, सावित्री सत्यवान, शांता, लक्ष्मी, कर्मवीर, सांसारिक सुख, आदर्श बहू, सीताराम,

कन्याप्रबोध, कन्यापत्रदर्पण, जान स्टुअर्ट मिल का जीवनचरित, स्वाधीनता, प्रतिभा, सीतादेवी, रणवीर अभिमन्यु, आर्यगौरव, आर्यसंगीत-शतक, भारतमय स्वप्न, अपूर्व संग्रह, पद्यप्रबोध, दयानंदचरित, वैदिकविवाहादर्श, स्वाधीन विचार, घटनाघटाटोप, अर्थ में अनर्थ भाग १ और २, भूतनाथ की जीवनी छठा भाग।

Indian Antiquary for June 1913 and Index Vol XLI of 1912

प्रेम और पवित्र जीवन

(६) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई।

—:०:—

प्रबन्ध-कारिणी समिति

शनिवार तारीख़ ३० अगस्त १९१३ संध्या के ५½ बजे

स्थान सभा-भवन

(१) तारीख़ ७ जुलाई और १२ जुलाई १९१३ के कार्य-विवरण उपस्थित किए गए और स्वीकृत हुए।

(२) निश्चय हुआ कि इस वर्ष नागरी-प्रचारिणी पत्रिका के सम्पादक पण्डित रामचन्द्र शुक्ल और उसके सहायक सम्पादक बाबू रामचन्द्र वर्म्मा नियत किये जांय। नागरी-प्रचारिणी ग्रन्थमाला के सम्पादक बाबू श्यामसुन्दरदास बी०ए०, लेखमाला के सम्पादक पंडित चन्द्र धर शर्म्मा, सुबोध व्याख्यान के निरीक्षक पण्डित रामनारायण मिश्र, आर्यभाषा पुस्तकालय के निरीक्षक बाबू ब्रजचन्द्र और नागरीप्रचार के निरीक्षक बाबू गौरीशंकर प्रसाद बी० ए०, एलएल बी० इस वर्ष भी रहें।

(३) निश्चय हुआ कि पंडित सरयूनारायण त्रिपाठी से प्रार्थना की जाय कि लेखमाला में जो ग्रीस का इतिहास और स्त्रियों के रोग नामक ग्रन्थ छप रहे हैं उनका सम्पादन वे कृपापूर्वक कर दें।

(४) मंत्री ने सूचना दी कि इस वर्ष प्रबन्धकारिणी समिति के अधिवेशनों में उपस्थित न होने अथवा उनके सम्बन्ध में सम्मति न भेजने के कारण १३वें नियम के अनुसार उस समिति में रेवरेण्ड ई० ग्रीव्स, पण्डित माधवप्रसाद पाठक, बाबू जुगलकिशोर और कवि गोविन्द गिल्ला भाई के स्थान खाली हुए हैं।

निश्चय हुआ कि इन स्थानों पर ये ही सज्जन पूर्ववत् नियत रहें।

(५) निश्चय हुआ कि इस वर्ष प्रबन्ध-कारिणी-समिति के प्रधान बाबू श्यामसुन्दर दास बी० ए० और उसके उप-प्रधान पण्डित रामनारायण मिश्र बी० ए० चुने जांय।

(६) निश्चय हुआ कि मंत्री और उपमंत्री का कार्य-विभाग इस वर्ष किस प्रकार किया जाय इसे वे लोग स्वयं निश्चित करलें।

(७) हरदोई के नागरी-प्रचारक पुस्तकालय और टुंडला के आनन्दभवन पुस्तकालय के पत्र उपस्थित किए गए जिनमें इन्होंने सभा द्वारा प्रकाशित पुस्तकों के लिये प्रार्थना की थी।

निश्चय हुआ कि इन पुस्तकालयों को प्रकाशित पुस्तकों की एक एक प्रति अर्द्ध मूल्य पर दी जाय।

(८) बाबू माधवप्रसाद का यह प्रस्ताव उपस्थित किया गया कि सभा अन्यत्र की उत्तम और उपयोगी पुस्तकों को अपनी पुस्तकों के परिवर्तन में लेकर उनकी बिक्री भी किया करे।

निश्चय हुआ कि यह प्रस्ताव इस समिति में बाबू माधव-प्रसादजी की उपस्थिति में विचारार्थ उपस्थित किया जाय।

(९) वेतनवृद्धि के लिये बनारस की दीवानी अदालत के मोहर्रिर पण्डित काशीनाथ नायक पालना का प्रार्थनापत्र उपस्थित किया गया।

निश्चय हुआ कि १ नवम्बर १०१३ से इनके वेतन में १) रु० की मासिक वृद्धि की जाय।

(१०) पण्डित ज्वालाप्रसाद शर्म्मा का यह प्रस्ताव उपस्थित किया गया कि सभा पण्डित रामावतार पाण्डेय से हिन्दी में एक समाजशास्त्र लिखवावे और महर्षि दयानन्द सरस्वती ने हिन्दी भाषा का विशेष उपकार किया है अतः उनका एक चित्र सभा-भवन में लगवाया जाय।

निश्चय हुआ कि समाजशास्त्र-विषयक प्रस्ताव पण्डित रामावतार पाण्डेयजी की सम्मति के सहित समिति के सम्मुख विचारार्थ उपस्थित किया जाय और महर्षि दयानन्द का एक चित्र सभाभवन में लगाया जाय।

(११) पण्डित रामचन्द्र शुक्ल का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने लिखा था कि बाबू राधाकृष्णदास के

जीवनचरित के लिये सभा ने उन्हें जो पदक देना निश्चित किया है उसे सभा किसी अन्य उपयोगी लेख के लिये अन्य सज्जन को देने के काम में लावे।

निश्चय हुआ कि पण्डित रामचन्द्र शुक्ल को इसके लिये धन्यवाद दिया जाय और लिखा जाय कि यह मेडल उन्हें महाराज कुमार बाबू कृष्णप्रसाद सिंह की ओर से दिया गया है अतः इसे और किसी काम में लाने का सभा को अधिकार नहीं है।

(१२) पण्डित राजमणि त्रिपाठी का यह प्रस्ताव उपस्थित किया गया कि सभा व्यवहारपत्र दर्पण का एक संशोधित संस्करण तैयार करावे और इसके लिये यदि आवश्यक होगा तो वे सभा को अपने नोट्स भेज देंगे।

निश्चय हुआ कि इस सम्बन्ध में उनसे नोट्स मंगवाए जांय।

(१३) पण्डित जगन्नाथ पुच्छरत का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने लिखा था कि वे सभा द्वारा एक रौप्यपदक उस विद्यार्थी को दिया चाहते हैं जो "राजयक्ष्मा के कारण और उससे बचने के उपाय" पर एक सर्वोत्तम लेख लिखे।

निश्चय हुआ कि सभा की सम्मति में यदि वे इस पदक को वैद्य सम्मेलन के द्वारा दें तो उत्तम होगा।

(१४) पण्डित कामताप्रसाद गुरु का १६ अगस्त का पत्र उपस्थित किया गया जिसके साथ उन्होंने हिन्दी-व्याकरण के प्रथम भाग की संशोधित प्रति भेजी थी और इसे पूरा करने के लिए आठ मास का समय और मांगा था।

निश्चय हुआ कि समिति ने इसे साधारण दृष्टि से जहाँ तक देखा है यह संतोषजनक हुआ है। इसे समाप्त करने के लिये पण्डित कामताप्रसादजी को आठ मास का समय और दिया जाय।

(१५) हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन कार्यालय के मंत्री का पत्र उपस्थित गया जिसमें उन्होंने लिखा था कि उनके भाद्रपद कृ० १ के निश्चय नं० ७ और १२ में लेखों की जो विषय-सूची दी है उन विषयों पर सभा अपने सभासदों से लेख लिखवा कर सम्मेलन की स्वागत-कारिणी-समिति के पास भेजवा दे।

निश्चय हुआ कि सभासदों की सूचना के लिये इस विषय में एक नोट नागरी-प्रचारिणी पत्रिका में प्रकाशित कर दिया जाय।

(१६) जालन्धर से निकलनेवाले "भारत" नाम के उर्दू समाचारपत्र के सम्पादक का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने अपने पत्र के परिवर्तन में नागरी-प्रचारिणी पत्रिका दिए जाने के लिये लिखा था।

निश्चय हुआ कि एक वर्ष तक उन्हें बिना मूल्य पत्रिका दी जाय।

(१७) पुस्तकालय के निरीक्षक के नाम पुस्तकाध्यक्ष का ३० अगस्त १९१३ का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने लिखा था कि (क) एक ही पुस्तक की दो दो तीन तीन प्रतियाँ होने के कारण जो पुस्तकें पुस्तकालय से निकाल दी गई हैं उनके स्थान की पूर्ति के लिये १५० नवीन पुस्तकों के क्रय करने की आवश्यकता है (ख) पुस्तकालय के कई सहायकों के यहाँ बहुत दिनों का चन्दा और कुछ पुस्तकें रुकी हुई हैं जिन्हें वे महाशय निरन्तर तगादा करने पर भी नहीं देते (ग) पुस्तकों के जिल्द बाँधने का कार्य सन्तोषजनक नहीं हो रहा है।

निश्चय हुआ कि (क) क्रय करने के लिये डेढ़ सौ पुस्तकों की सूची समिति के सम्मुख उपस्थित की जाय और जो पुस्तकें पुस्तकालय से निकाली गई हैं वे नीलाम द्वारा बेच डाली जाँय, (ख) जिन सहायकों के यहाँ ३ मास से अधिक का चन्दा बाक़ी पड़ गया हो उनके नाम नियम ७१ के अनुसार सहायकों की नामावली से अलग कर दिए जांय और आगे से इस नियम पर विशेष ध्यान रक्खा जाय। चन्दे का जो रुपया और जो पुस्तकें सभासदों के यहाँ रुक गई हैं उन्हें उचित कार्रवाई द्वारा प्राप्त करने के लिये सब आवश्यक पत्र मंत्री के पास भेजे जाँय, (ग) पुस्तकालय का दफ़्तरी सब कार्यों के पहिले पुस्तकों की जिल्द बाँधने का कार्य देखे।

(१८) बाबू श्यामसुन्दर दास के प्रस्ताव पर निश्चय हुआ कि जो सज्जन सम्पूर्ण पृथ्वीराजरासो एक साथ मँगावें उनसे इसका मूल्य केवल २५) रु० लिया जाय और सभा के स्टाक में सम्पूर्ण ग्रन्थ की जितनी प्रतियाँ हों अलग अलग बंडलों में बँधवा ली जांय।

(१६) वेतन वृद्धि के लिये सुखनन्दन मिश्र चपरासी का प्रार्थना पत्र उपस्थित किया गया ।

निश्चय हुआ कि १ सितम्बर १६१३ से उसे ७॥) रु० मासिक वेतन दिया जाय ।

(२०) बाबू श्यामसुन्दरदासजी के प्रस्ताव पर निश्चय हुआ कि भरोस कहार को मासिक वेतन में इस मास से १) रु० की वृद्धि की जाय और यह एक रुपया कोश-विभाग से उसे दिया जाय ।

(२१) बाबू गौरीशंकरप्रसादजी के प्रस्ताव पर निश्चय हुआ कि पण्डित रामनारायण मिश्र बी० ए० और पण्डित कृष्णराम मेहता बी० ए० एल एल० बी० जिन्होंने एक एक सौ रुपया सभा के सहायतार्थ दिया है वे इस सभा के स्थायी सभासद चुने जांय और उनके चन्दे का रुपया स्थायी कोश में जमा करके ऋण चुकाने के काम में लाया जाय ।

(२२) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई ।

गौरीशंकरप्रसाद मंत्री ।

विशेष सूचना ।

सभा को इस बात का बड़ा दुःख है कि कई कारणों से, विशेष कर प्रेसों की गड़बड़ी से, नागरीप्रचारिणी पत्रिका कुछ काल से यथासमय नहीं निकल सकी । इस त्रुटि के दूर करने का बहुत कुछ उद्योग किया गया पर इसमें यथेष्ट सफलता नहीं प्राप्त हुई । अब से यह पत्रिका प्रयाग के इंडियन प्रेस में छपेगी । इसका प्रबन्ध करने में भी कुछ समय निकल गया, इससे इसकी संख्याएं और भी पिछड़ गईं । अब यह जुलाई-अगस्त की युक्त संख्या प्रकाशित की जाती है । आशा है कि इसी मास में सितंबर-अक्तूबर की संख्याएं भी निकल जायँ । इन दो अंकों की सामग्री प्रेस में भेज दी गई है । इसके अनन्तर आशा है कि पत्रिका यथासमय बराबर निकलती जाय ।

हिंदी के लेखकों से भी सविनय प्रार्थना है कि इस पत्रिका को अपने लेखों से विभूषित करने की कृपा करें ।

काशी— ७—११—१३ | गौरीशंकरप्रसाद
मंत्री, नागरीप्रचारिणी सभा ।

नमक सुलेमानी

इसके खाने से मन्दाग्नि, अजीर्ण, भोजन हजम न होना, पेट का फूलना, अरुचि, भूख न लगना, खट्टी डकारें आना, कै, व दस्त होना, पेट की गुड़गुड़ाहट, कंठ की जलन, मुख का स्वाद ख़राब रहना, शूल, हैज़ा, वायुगोला, पिलही, आदि सब प्रकार के उदर रोग शीघ्र आराम होते हैं। दांतों का दर्द, दाद, बिच्छू, बर्रै या मक्खी के ज़हर पर लगाने से फ़ायदा होता है। गृहस्थ मात्र को एक एक शीशी अवश्य घर में रखना चाहिए। दाम एक शीशी ।) वी० पी० से ॥) डाक महसूल ।) में ४ शीशी जा सकती हैं। यह दो शीशी से कम नहीं भेजा जाता।

जिन्होंने और जगह का नमक सुलेमानी खाया है उनको इसकी भी परीक्षा करना चाहिए। इतना सस्ता और गुणकारी कहीं नहीं मिलेगा। हर जगह एजेण्टों की ज़रूरत है। हमारे यहां और भी सब प्रकार की औषधें मिलती हैं। सूचीपत्र मँगा कर देखिए।

पंडित धरणीधर वैद्य

सागर सी० पी०

—:०:—

नं० ६ रेमिङ्गटन स्टेण्डर्ड टाइपराइटर
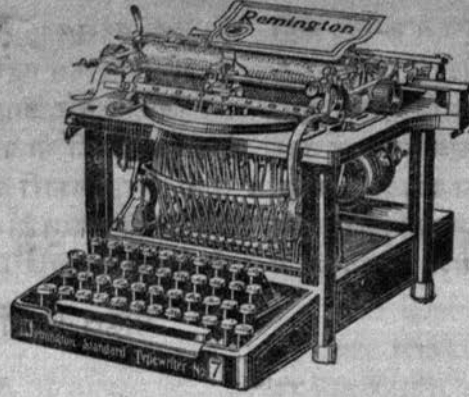
इस मेशीन से मराठी संस्कृत या देवनागरी अक्षरों में लिखा जा सकता है। समय और श्रम को बचानेवाली इन मशीनों को राजा महाराजा भारतवर्षीय राज्यों के दफ़्तर व्यवसायी सज्जन और प्रत्येक पुरुष जिसको समय और श्रम के बचाने की क़दर है व्यवहार करते हैं और इन मशीनों की सफलता से प्रसन्न हैं। क़लम से कहीं ज्याद: तेज़ लिखने के सिवाय इन मशीनों का लिखना सुन्दर और सहज होता है और बड़ी बात यह होती है कि एक मज़मून की बहुतसी नक़लें एक ही साथ छापी जा सकती हैं। हमारे कारख़ाने की मेशीनें तमाम दुनियाँ में फैली हुई हैं और हमारा नाम इन मराठी संस्कृत और देवनागरी हिन्दी मेशीनों की मज़बूती और नेहायत कारआमद होने की गारेन्टी है।

मिलने का पता—

रेमिङ्गटन टाइपराइटर कम्पनी

(आफ न्यूयार्क एण्ड लन्दन)

नं० २६ ए केनिंग रोड इलाहाबाद।

निम्नलिखित स्थानों से भी ये मेशीनें मिल सकती हैं:—

रेमिङ्गटन टाइपराइटर कम्पनी
७ कौन्सिल हाउस स्ट्रीट, कलकत्ता।

रेमिङ्गटन टाइपराइटर कम्पनी
७५ हार्नबी रोड, बम्बई

रेमिङ्गटन टाइपराइटर कम्पनी
वाइ. एम. सी. ए बिल्डिङ्गस, मदरास।

रेमिङ्गटन टाइपराइटर कम्पनी
चेयरिंगक्रोस बिल्डिङ्गस, लाहोर।

इत्यादि।

भाग १८ } सितम्बर और अक्तबर १९१३ { संख्या ३—४

वर्त्तमान कालिक हिन्दी-साहित्य के गुण-दोष । *

(ले० पंडित श्यामविहारी मिश्र और पंडित शुकदेव विहारी मिश्र)

हमारे यहाँ काव्य शब्द से केवल पद्य काव्य का आशय नहीं निकलता, जैसा कि अँगरेज़ी शब्द प्वैट्री से है। यहाँ गद्य और पद्य दोनों में काव्य हो सकता है। हिन्दी भाषा की उत्पत्ति संवत् ७०० के लगभग हुई, परन्तु उस समय की रचनायें अब हस्तगत नहीं होतीं। सबसे प्रथम की रचना जो अब मिलती है और जिसे काव्य भी कहना चाहिये, वह महाकवि चन्दबरदाई कृत पृथ्वीराजरासो है। इस ग्रन्थ में बहुत कर शृंगार तथा युद्ध के वर्णन हैं। इस में वीर और शृंगार रसों का अच्छा चमत्कार है।

हम ने हिन्दी-साहित्य के इतिहास में संवत् ७०० से लेकर अब तक का साहित्य-काल आठ विभागों में बाँटा है। संवत् १५६० तक महात्मा सूरदास का रचना-काल नहीं प्रारम्भ हुआ था। अतः इस समय तक पूर्व प्रारम्भिक काल (७००—१३४३), उत्तर प्रारम्भिक काल (१३४४—१४४४) और पूर्व माध्यमिक काल (१४४५—१५६०) माने गये हैं। १५६१ से गोस्वामी तुलसीदास के मरण काल १६८० तक प्रौढ़ माध्यमिक काल माना गया है। इसके पीछे १७९० तक पूर्वालंकृत काल, १८८९ पर्यन्त उत्तरालंकृत काल, १९२५ तक परिवर्त्तन काल और १९२६ से अब तक वर्त्तमान काल चलते हैं। इन समयों के नाम इनकी भाषाओं का भी कुछ दिग्दर्शन कराते हैं। वर्त्तमान समय के गुण दोष जानने के लिये आवश्यक प्रतीत होता है, कि इन समयों की भाषाओं की दशाओं का संक्षेप में कुछ कथन कर दिया जाय।

पूर्व प्रारम्भिक समय में भाषा प्राकृत-मिश्रित थी और वीर, शृंगार एवं कथा-विभागों का प्राधान्य रहा, परन्तु ये कथायें विशेषतया धर्म्म-सम्बन्धिनी न थीं। उत्तर प्रारम्भिक काल में कवियों ने भाषा

* यह लेख हिंदी साहित्यसभा लखनऊ के एक अधिवेशन में जो ११ अक्तूबर १९१३ को हुआ था, पढ़ा गया था।

को प्राकृत से छुटकारा देना चाहा, या यों कहें कि देश से प्राकृत भाषा का साम्राज्य बिल्कुल उठ गया। फिर भी, जैसा कि स्वाभाविक था, कोई एक भाषा प्राकृत के स्थान पर न जम सकी और लोगों ने ब्रज, अवधी, राजपूतानी, खड़ी और पूर्व भाषाओं में रचना की, परन्तु यह विशेषता ब्रजभाषा को अवश्य मिली कि अपनी अपनी प्रान्तिक भाषाओं के साथ कवियों का उसकी ओर भी कुछ कुछ झुकाव देख पड़ा। इस स य वीर, शृंगार, शान्ति और कथा प्रासंगिक रचनाओं का प्राधान्य रहा और कथा-विभाग ने धर्मकथाओं से सम्बन्ध जोड़ा और राज-यश-कीर्त्तन से उसका सम्बन्ध शिथिल पड़ा। गद्य काव्य का भी आरम्भ इसी काल में हुआ और महात्मा गोरखनाथ पहले ब्राह्मण कवि थे, जिन्होंने हिन्दी को भी अपनाया। इनके पूर्व वाले कवि गण ब्रह्म भट्ट थे और कुछ मुसल्मान। पूर्व माध्यमिक काल में ब्रज, अवधी, पूर्वी और पंजाबी भाषाओं का प्राधान्य रहा और शान्ति, कथा तथा नाटक विभागों में रचना विशेष हुई। इस समय में हिन्दी ने अच्छी उन्नति की और उसमें विद्यापति ठाकुर तथा कबीर-दास जैसे सुकवि हुये। इस काल में ब्रज-भाषा का बल बढ़ चला और धार्म्मिक विषयों की प्रतिभा देदीप्यमान हुई।

प्रौढ़ माध्यमिक काल से हिन्दी की उन्नति बहुत ही सन्तोषदायिनी हुई। इस समय में धार्म्मिक पुनरुत्थान के साथ वैष्णवता का बल बहुत बढ़ा और महात्मा वल्लभाचार्य्य, चैतन्य महाप्रभु, हितहरि-वंश, रामानन्द और हरिदास की शिक्षाओं के प्रभाव हिन्दी भाषा के पूर्ण उन्नायक हुये। इस प्रकार वैष्ण-वता का भाषा-साहित्य से घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया और धार्म्मिक रचनाओं ने हिन्दी को भारी प्रभा प्रदान की। वैष्णवता का सम्बन्ध मथुरा और अयोध्या से विशेष था। मथुरावासी कवियों ने अधिकता से भजनों द्वारा ब्रजभाषा में कृष्ण-यश-गान किया और अयोध्या वालों ने कथा प्रासंगिक ग्रन्थों में अवधी भाषा द्वारा राम-यश गाया। इनमें दोहा चौपाइयों की विशेषता थी। माथुर कवियों में सूरदास सर्वप्रधान थे और इधर तुलसीदास। परन्तु इन दोनों महात्माओं को छोड़ कर उधर (माथुर) के कवियों और उनकी प्रणाली को अनेकानेक परमो-त्कृष्ट कवियों द्वारा बड़ी ही सहायता मिली और अवधी भाषा का प्रताप ब्रजभाषा के सामने बहुत मन्द रहा। माथुर वैष्णवता के साथ कृष्ण-यश-गान की प्रथा ने बहुत भारी बल पाया और साहित्य प्रथानुयायी अन्य सुकवियों ने उसी का अनुसरण किया, जिस से आगे चलकर शृंगारी विषयों की इतनी भरमार हुई कि अन्य साधारणतया रुचिकर एवं लोकोपकारी विषयों की कुछ भी सन्तोषकारिणी उन्नति न हो सकी। यह नहीं कहा जा सकता है कि ऐसे विषयों का हमारे यहाँ अभाव है, परन्तु आनु-षंगिक दृष्टि से इन की बड़ी ही मन्द दशा है। इस समय के द्वितीयार्द्ध में अकबर के राजत्वकाल की स्थिर की हुई शान्ति ने वैष्णवता के साथ हिन्दी को पूरा लाभ पहुँचाया और उसका अच्छा विकास हुआ।

पूर्वालंकृत काल में भारत में वीरता का अच्छा प्रादुर्भाव हुआ और चिरविमर्द्दित हिन्दुओं ने बल पकड़ कर चिर स्थापित मुसल्मानी राज्य का ध्वंस किया। ऐसी दशा में वीर काव्य का बाहुल्य स्वाभा-विक था और वह हुआ भी, परन्तु दृढ़तापूर्वक संस्थापित शृंगार काव्य का बल कुछ भी शिथिल नहीं हुआ। प्रौढ़ माध्यमिक काल में शृंगार, शान्ति और कथा विभागों का बल था परन्तु इस काल में वीर, शान्ति और रीति विभागों का प्राधान्य हुआ। उस समय में ही भाषा बहुत अच्छी उन्नति कर चुकी थी, सो इस काल में कवियों ने उसे अनुप्रासादि भाषालंकारों से विभूषित करने का विशेष ध्यान रक्खा, जिस से उसकी छटा और भी बढ़ गई। उस समय ब्रजभाषा के साथ अवधी का भी कुछ कुछ बल था, परन्तु इस अलंकृत काल में ब्रजभाषा का बल और भी बढ़ा और अवधी का घट गया।

उत्तरालंकृत काल में अवधी ने कुछ उन्नति की और खड़ी बोली का भी कुछ कुछ प्रचार हुआ। इस में शृंगार और रीति विभागों का बल बहुत ही बढ़ा, तथा कथा ने भी फिर प्रबलता ग्रहण की। परिवर्त्तन काल में अवधी भाषा दब गई और ब्रज-भाषा के साथ खड़ी बोली की प्रबलता हुई। इस में शृंगार का बल कुछ घट गया और गद्य ने प्रबलता पाई। इस में प्राचीन और नवीन विचारों में नोंक झोंक सी रही, क्योंकि अब अँगरेज़ी राज्य हो जाने से देश के साथ पाश्चात्य सांसारिक लाभ-प्रदायक नये विचारों का पदार्पण भाषा-साहित्य में भी हो रहा था। वर्त्तमान काल में गद्य और कथा-विभागों का बहुत बल है, तथा शान्ति, स्फुट और नाटक विभागों की भी कुछ प्रबलता है। अब लेखकों ने लोकोपकारी विषयों की ओर भी बहुत अच्छा ध्यान दिया है और लाभकारी पुस्तकों के अनुवाद भी हमारे यहाँ बहुतायत से हो रहे हैं। सूक्ष्म रीति से हमारे साहित्य की उत्पत्ति से अद्य पर्य्यन्त यह दशा रही है। इस पर ध्यान देने से आज की एकत्रित विद्वन्मंडली को आगे कहे जाने वाले गुण दोषों के समझने एवं उनके कारण जानने में विशेष सुभीता होगा।

वर्त्तमान साहित्य प्राचीन काव्य से तीन परम प्रधान बातों में भिन्न है, अर्थात् खड़ी बोली प्रचार, गद्य-गौरव और लोकोपयोगी-विषय-समादर। ये तीनों बातें वर्त्तमान साहित्य को ख़ूब ही गौरवान्वित करती हैं। इन तीनों भेदों का प्रादुर्भाव हमारी भाषा में अँगरेज़ी राज्य के कारण हुआ है। पूर्वीय और पाश्चात्य देशों में बहुत दिनों से संसारीपने की शिथिलता एवं प्रबलता का मुख्य भेद रहा है। हमारे यहाँ दया और संसार की असारता के भावों का बहुत दिनों से उचित से बहुत अधिक साम्राज्य रहा है। यहाँ दीन को देख कर उसे दान देने की इच्छा ऐसी बलवती रही कि उचितानुचित का विचार दाताओं के ध्यान से निकल सा गया। उन्होंने प्रायः यह नहीं सोचा कि दीन मनुष्य के दैन्य के कारण उसी के दुर्गुण हैं अथवा कुछ और। इस प्रकार कुपात्रों का दान हमारे यहाँ बहुत प्रचलित होगया, जिससे देश के द्रव्योत्पादक बल को भारी हानि पहुँची। देश के लिये वही दान लाभकारी है, जिससे भविष्य के द्रव्योत्पादक बल की वृद्धि हो। कुपात्रों को इतना बहुतायत से दान मिला कि हमारे यहाँ जीवन होड़ का उचित बल कभी नहीं हुआ, जिससे धनोपार्ज्जन में कमी हो कर देश में अवनति आगई और जातीय बल खोकर हम दानी लोग भी पतित और नीच हो गये। यही दशा बहुत करके स्याम, चीन, बरमा, लंका, जापान आदि सभी पूर्वीय देशों की हुई। जापान ने तो अपनी दशा सुधार ली, परन्तु अन्य देश अब तक अधःपतित दशा में हैं। भारत में अँगरेज़ी प्रताप से अब समुचित उन्नति हो रही है, यद्यपि हम लोगों की कादरता से उसमें अभी सन्तोषदायिनी शीघ्रता नहीं है।

वर्त्तमान साहित्य-प्रणाली के गुण दोषों में मुख्यता इसी उपर्युक्त कादरता के अभाव अथवा अस्तित्व पर निर्भर है। लोकोपकारी विषयों को आदर देने वाली नवीन प्रथा का स्थिर हो जानाही एक बहुत बड़ा उत्साहप्रद कार्य्य है। जैसी देशदशा होगी, वैसीही कविता भी स्वभावतः होगी। प्राचीन काल में जीवन-होड़ (struggle for existence) की निर्बलता से लोकोपकारी विषयों की ओर हमारे कविजन का विशेषतया ध्यान नहीं गया, यद्यपि यह सदैव ध्यान में रखना चाहिये कि अन्य बातों में उन्होंने साहित्य-गरिमा पूर्णता को पहुँचा दी। इस समय उन्नायक दल के लेखकों की रचनायें विशेषतया इन्हीं विषयों से भरी रहती हैं, यद्यपि ब्रजभाषा के अनेकानेक कविजन अब तक प्राचीन प्रथा पर ही चलते हैं और उपर्युक्त नवीन भावों का आदर अज्ञान अथवा विचारशून्यता से नहीं करते। इस समय भी प्राचीन प्रथानुयायी कवियों की गणना अधिक है, परन्तु उनकी संख्या दिनों दिन घटती जाती है और नवीन प्रथानुयायी कवियों की गणना अच्छी शीघ्रता से बढ़ रही है। इन बातों पर विचार करने से चित्त

परम प्रसन्न होता है। गद्य काव्य से ब्रजभाषा का प्रयोग अब बिलकुल उठ गया है और पद्य से भी उठता जाता है। गद्योन्नति अधिकतर अवस्थाओं में देशोन्नति की सहगामिनी होती है। गद्य में प्रायः कारबारी विषयों का आधिक्य रहता है, और ऐसे ग्रन्थ तभी लिखे जाते हैं, जब देश में कारबार की प्रचुरता होती है। कारबारी ग्रन्थों के अतिरिक्त दर्शन, रसायन आदि के ग्रन्थ गद्य में पाये जांयगे। ये भी देशोन्नति के साथही चलते हैं। खड़ी बोली की उन्नति ऐक्य के कारण होती है। जब समस्त देश के विविध प्रान्त एक दूसरे से एकपन का भाव बढ़ाते हैं, तभी उन के चित्त में एक भाषा की भी आवश्यकता जान पड़ती है। अधिक दशाओं में सबको पसन्द आनेवाली कोई एक-देशीय भाषा न होगी। सब लोग प्रायः सर्व-व्यापिनी भाषा को ही पसन्द करेंगे। ऐसी भाषा खड़ी बोली ही है। इसी लिये अँगरेज़ी राज्य द्वारा ऐक्य वर्द्धन के साथ ही साथ खड़ी बोली की महिमा बढ़ी और एक-लिपि-विस्तार परिषद् ने भारतवर्ष भर में एक लिपि जारी करने का शुभ प्रयत्न किया और कर रहा है।

अँगरेज़ी के नवागत भावों ने जातीयता-वर्द्धन में अच्छी सहायता दी, जिससे मातृभूमि-माहात्म्य, भ्रातृ-प्रेम, ऐक्य आदि विषयों पर साहित्य-रचना होने लगी है, जो वर्त्तमान समय के उन्नत विचारों का अच्छा परिचय देती है। प्राचीन समय में कवियों ने भक्ति, हिन्दूपन आदि पर समय समय पर ध्यान दिया और इन विषयों पर कवितायें भी प्रचुरता से बनीं, विशेषतया भक्ति पक्ष पर। फिर भी उस समय जातीयता के अभाव ने भारतवर्ष भर को एक समझने वाले विचारों को नहीं उठने दिया और इसलिये देशहित-सम्बन्धी साहित्य का चलन बिलकुल नहीं हुआ। वर्त्तमान गद्य-महिमा ने लोकोपयोगी विषयों की अच्छी उन्नति की है और दिनों दिन ऐसे ग्रन्थ बनते एवं अनुवादित होते जाते हैं। इन कारणों से केवल हिन्दी पढ़े हुये पाठकों को भी उन्नत विषयों के जानने का सुभीता होगया है। कभी कभी लेखक गण यह बात भूल से जाते हैं और ग्रन्थ के बीच में अँगरेज़ी शब्दों एवं वाक्यों को बिना अनुवाद किये भी ऐसा लिख देते हैं, मानों सभी लोग अँगरेज़ी जानते हैं। ऐसी दशाओं में अँगरेज़ी कोष्ठक (bracket) या पृष्ठपाद की टिप्पणी (footnote) में लिखना अच्छा है। आज कल लेखक बाहुल्य से उपयोगी ग्रन्थ-बाहुल्य की भी अच्छी वृद्धि हुई है, जिससे भाषा-ग्रन्थभाण्डार-भरण बहुत उत्तमता से हो रहा है और हुआ भी है। इन बातों से गत तीस पैंतीस वर्षों में विविध उपयोगी विषयों का भाषा-भाण्डार इतना भरा, जितना कि इससे तिगुने समय तक किसी काल में नहीं हुआ। प्रायः २० वर्षों से समाचार पत्र एवं पत्रिकाओं की भी अच्छी वृद्धि हुई है। इनसे केवल हिन्दी जानने वालों को विविध भांति के समाचारों एवं विचारों के जानने का अच्छा सुभीता मिला है। इन में एक भारी दोष भी है कि अधिकतर पत्रों के सम्पादक प्राचीन विचाराश्रयी और बहुधा पूरे पुरानी लकीर के फ़क़ीर होते हैं। इन लोगों के कारण बहुतेरे लोगों के पुराने अशुद्ध विचार हटने के स्थान पर और भी दृढ़ हो जाते हैं। यह दोष पत्र प्रथा का नहीं है, वरन आज कल के हमारे मानसिक अधःपतन को प्रकट करता है। पत्रों के मालिकों को सम्पादक नियत करने में बहुत सोच विचार करना चाहिये, क्योंकि उनकी थोड़ी सी भूल से हज़ारों भाइयों के विचार गन्दे हो सकते हैं। संवत् १९५७ में हमने साहित्य-प्रणाली के तत्कालीन दोषों पर विचार करने में समस्यापूर्ति के पत्रों की वृद्धि पर खेद प्रकट किया था। हर्ष का विषय है कि अब ऐसे पत्रों का बल बिलकुल टूट सा गया है।

वर्त्तमान काल की गद्य-प्रणाली का सूत्रपात्र लल्लू लाल एवं सदल मिश्र के समय संवत् १८६० में हुआ था और उसकी वृद्धि सितारे हिन्द राजा शिवप्रसाद ने की। येही महाशय (सं० १९११) प्रथम गद्य-लेखक थे कि जिन्होंने शुद्ध खड़ी बोली का गद्य में प्रयोग किया और ब्रजभाषा को बिलकुल छोड़ दिया। इनके पीछे राजा लक्ष्मणसिंह तथा

स्वामी दयानन्द ने श्रेष्ठतर गद्य में रचना की। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के समय से गद्य ने बहुत ही अच्छी उन्नति की। आज कल के अच्छे अच्छे गद्य-लेखक उस समय से भी श्रेष्ठतर भाषा का प्रयोग करते हैं। भाषा ने उन्नति करते करते अब अच्छा रूप ग्रहण कर लिया है, परन्तु फिर भी एक दोष यह है कि अब तक उन्नत भाषा लिखने में लोग संस्कृत भाषा के कठिन शब्द लिखना ही अलम् समझते हैं, और ऐसे ग्रन्थ लिखने का प्रयत्न नहीं करते कि जैसे अँगरेज़ी के बड़े बड़े लेखक लिखते हैं और बहुत दिनों से लिखते आये हैं। अब तक गद्य में दर्शन, रसायन, विज्ञान, कारबार आदि के ग्रन्थ विशेषता से बने हैं, परन्तु ऊँचे साहित्य संबन्धी गद्य ग्रन्थ बहुत कम देख पड़ते हैं। गद्य में अलंकारों, रसों, प्रबन्धध्वनियों तथा अन्यान्य काव्यांगों को लाकर उसे उत्कृष्ट एवं कठिन बनाने का अभी पूरा क्या प्रायः कुछ भी प्रयत्न नहीं हुआ है। आशा है कि इस ओर हमारे लेखकगण ध्यान देंगे। भाषा गद्य की वास्तविक अवस्था अभी केवल ६० वर्ष की है। इससे उपर्युक्त प्रकार की ऊँची लेखन-शैली की ऊनता अभी उत्साह-विनाशिनी नहीं है, परन्तु लेखकों को इस ओर अब ध्यान अवश्य देना चाहिए।

अब तक हमारे लेखकों ने भाषा के गूढ़ीकरण में संस्कृताश्रय लेना ही आवश्यक जान रक्खा है, परन्तु इस बात पर सदैव ध्यान रखना चाहिए कि अन्य भाषाश्रय किसी भाषा को बड़ा नहीं बना सकता। संस्कृत और भाषा में बहुत दिनों से संबन्ध अवश्य चला आता है, परन्तु इसकी वृद्धि भाषा-गौरव-वर्द्धिनी कदापि नहीं हो सकती। जैसे मनुष्यों के लिये आत्मनिर्भता एक आवश्यक गुण है, वैसे ही वह भाषाओं के लिये भी है। किन्तु आज कल के लेखक इस अनुपम गुण को भूल कर भाषा को संस्कृत की सेवकिनी बनाना चाहते हैं। शुद्ध भाषा के लिये व्याकरण की आवश्यकता है, परन्तु व्याकरण भाषा का अनुगामी होना चाहिए, न कि भाषा व्याकरण की। जिस भाषा का व्याकरण जैसा ही कठिन और दुर्बोध होगा, उस भाषा का वैसी ही शीघ्रता से पतन होगा। इसी कारण से संस्कृत आर्य्यों की भी मातृभाषा न रह सकी और केवल पुस्तकों में उसका प्रचार रह गया। यही दशा यथा समय प्राकृत की हुई। सर्वसाधारण बिना कुछ विशेषतया पढ़े लिखे दुर्ज्ञेय व्याकरणों के नियमों को हृदयंगम नहीं कर सकते। इसी लिये कठिन व्याकरणों के नियम स्थिर नहीं रह सकते और यदि बढ़ते बढ़ते वे भाषा के अंग हो जाते हैं तो उसका विनाश ही कर देते हैं। आज कल अनेक लेखकों में संस्कृत के नियमों के यथासम्भव भाषा में लाने की रुचि बढ़ती देख पड़ती है। संस्कृत में लिंग-भेद ऐसा कठिन है कि अनेक स्थानों पर बिना कोष देखे उसका ज्ञान ही दुस्तर हो जाता है। इन बातों का भाषा में लाना अनुचित है।

हमारी भाषा की श्रुतिमधुरता उसकी एक प्रधान महिमा है। संस्कृत में मिलित वर्णों के आधिक्य से आचार्य्यों ने श्रुतिकटु शब्द बहुत कम माने हैं, परन्तु हमारी भाषा में प्राचीन काल से आचार्य्यों एवं कवियों ने मिलित वर्णों को छन्दों में बहुत कम आने दिया है और बहुत से ऐसे शब्दों को श्रुतिकटु माना है। इसी कारण प्राचीन रचनाओं में कर्कशता का ऐसा अभाव है कि अन्य भाषा-प्रेमी लोग यदि हमारी भाषा की निन्दा तक करते हैं, तो भी उसके माधुर्य्य की प्रशंसा अवश्य कर देते हैं। खड़ी बोली के कवियों ने आजकल इस अनुपम गुण को प्रायः बिलकुल ही विस्मरण कर दिया है। एक तो खड़ी बोली में बिना ख़ास प्रयत्न के श्रुतिकटु आही जाता है, और दूसरे ये लोग संस्कृत-शब्दानुरागी होने से और भी मिलित वर्णों की भरमार रखते हैं, जिससे खड़ी बोली के छन्दों से श्रुतिमाधुर्य्य का लोप हुआ जाता है।

इस एवं अन्य कारणों से आजकल खड़ी बोली में प्रायः शुष्क-काव्य पाया जाता है और नीरसता का ऐसा समावेश है कि दस पृष्ठों की भी कविता साद्यन्त पढ़ जाना बड़े धैर्य्यवान् व्यक्ति का काम

है। वर्त्तमान कविगण प्रायः प्राचीन आचार्य्यों के ग्रन्थ अध्ययन किये बिना साहित्य रचना करने लगते हैं और कुछ लोगों में अहंकार की मात्रा ऐसी बढ़ी हुई है कि वे अपनी शिथिलातिशिथिल रचनाओं के आगे भी नामी आचार्य्यों तक के ग्रन्थों का पुराने, समय प्रतिकूल और भदेसिल समझते हैं। इन कारणों से वर्त्तमान खड़ी बोली के छन्दों में उच्छृंखलता की मात्रा बहुत आ गई है। खड़ी बोली के कवि गण दीर्घान्त छन्दों में भी ह्रस्व शब्द से काम प्रायः लेते हैं और यतिभंग दूषण से भी नहीं बचते। एक तो खड़ी बोली कविता मात्रा में कम है और दूसरे कवियों की उच्छृंखलता से ऐसी नीरस तथा शिथिल बनती है कि प्राचीन प्रथानुयायी उसको बिरहा, पँवारा आदि के ही समान बतला कर उसका उपहास करते हैं। आजकल की पद्य-रचनाओं में शाखाचंक्रमण तथा सुप्रबन्धाभाव के बड़े ही विकट दूषण आ जाते हैं। शाखाचंक्रमण कवियों का एक शाखा से दूसरी शाखाओं पर बार बार कूदने के समान रचना करने का कहते हैं। किसी भाव को लेकर उसे कुछ दूर चलाना चाहिए और उसके सम्बन्धी भावों एवं उपभावों को उसके समीप स्थान देना चाहिए, जिससे रस की पूर्ति हो, न यह कि एक भाव का कथन मात्र करके दूसरे पर कूद जाना। यदि सूर्य्य की किरणों का वर्णन उठावे तो उनकी मालाओं, संख्या-बाहुल्य, तेज, नेत्रों के चकाचौंध करने का बल, कमल खिलाना, संसार में उष्णता के ह्रास या वृद्धि से ऋतुओं का बदलना, फलों का पकाना, रसों का उत्पन्न करना, संसार की जीवन वृद्धि आदि अनेकानेक गुणों में से कुछ भी कहे बिना दूसरे भाव पर झट से कूद जाना साहित्य-शक्ति-हीनता का ही प्रमाण देगा। सुप्रबन्ध गुण वर्णन पूर्णता ही में आता है। जिस कथन को उठावें उसका सांगोपांग कथन कविता-शक्ति का एक अच्छा प्रदर्शक है। यदि किसी में बहुत ऊँचे ऊँचे विचार लाने का बल न भी हो, तो केवल सुप्रबन्ध से वह सुकवि माना जायगा। आजकल बहुधा लोग न ऊँचे विचार ही लाते हैं और न सुप्रबन्ध की ओर ही कुछ ध्यान देते हैं। यदि मतिराम की रचना देखी जावे तो विदित होगा कि इस कविचूड़ामणि में कितना अधिक भाव पुष्टीकरण का गुण वर्त्तमान है। इसी कारण से प्राचीन प्रथानुयायी कविगण शिष्यों को रसराज ग्रन्थ सब से पहले पढ़ाते हैं। आजकल सुप्रबन्ध का ऐसा भारी निरादर है कि बहुतेरे विज्ञ लोग भी मतिराम आदि महाकवियों को महा साधारण कवि कहने में नहीं हिचकते। सुप्रबन्ध का अभाव एवं शाखाचंक्रमण का समादर अधिकतर वर्त्तमान नये प्रकार के कवियों की रचनाओं को कलंकित कर रहा है। इसका मुख्य कारण आचार्य्यों का निरादर एवं साहित्य रीति पठन पाठन प्रणाली का तिरस्कार है। लोगों को भाषा-साहित्य के विषय में कुछ जान कर तब छन्द रचना आरम्भ करनी चाहिए। बहुत लोग समझते हैं कि संस्कृत-काव्य-प्रणाली जानने से ही वे भाषा-साहित्य के पण्डित कहलाने के याेग्य हो जाते हैं। यह भारी भूल है। यदि हमारे आचार्यों के रीति-ग्रन्थों का अध्ययन किया जाय तो विदित होगा कि उन्होंने कितना श्रम एवं चातुर्य्य का फल अपनी रीति-रचनाओं में रक्खा है और संस्कृत-रीतियों से भाषा में कितना भेद है?

आज कल कल पद्य-रचना की बड़ी हीनता है और नवीन विचारों के पाठकों तथा सम्पादकों में बड़ा ही विकराल पद्य-निरादर है। हमों ने दो तीन घंटों में जो गद्य लेख बिना ख़ास परिश्रम के लिख डाले, उन्हें तो सम्पादकों ने बड़े चाव से प्रकाशित किया और दस दस दिन के प्रयत्नों के फलस्वरूप छन्दों को सम्पादकों ने शील संकोच से काट छाँट कर छापा, यद्यपि उन्हीं ने गद्य में कहीं एक मात्रा भी नहीं घटाई बढ़ाई। इस पद्य-निरादर से भी खड़ी बोली की महिमा पद्य-काव्य में घट रही है अथवा होने नहीं पाती है। हमारे यहाँ प्राचीन कवियों ने अधिकतर दशाओं में धार्मिक कथाओं का ही कहना उचित माना। फल यह हुआ कि मेवाड़, जोधपुर, बूँदी, सिरोही, बुन्देलखंड, रीवाँ, दक्षिण आदि में

सैंकड़ों महाराज एवं महापुरुष हो गये हैं जिनके गुण कथन से कवि-शक्ति-स्फुरण एवं जातीयता-वर्द्धन हो सकता है, परन्तु इनके वर्णन न प्राचीन प्रथा के कवियों ने किये और न नवीन प्रणाली के लोग करते हैं। हमारे यहाँ पद्य-संबन्धी विषय-बाहुल्य और उसका अनुपयोग देखकर बड़ा शोक होता है। आजकल गद्य-संबन्धी साधारण से साधारण विषयों पर भी लेखकों का ध्यान रहता है, यहाँ तक कि सात आठ सौ गद्य-लेखक आज वर्त्तमान हैं, परन्तु पद्य लेखकों की संख्या और उनके द्वारा सद्विषयों का सदुपयोग दोनो बड़ी हीनावस्था में हैं। हमारे यहाँ महाकाव्यों का प्रायः अभाव सा है। महाकाव्य ग्रन्थ का लक्षण संस्कृत के ग्रन्थों में दिया है। उसमें सात से अधिक अध्याय हों, किसी महापुरुष का वर्णन और प्रसंग वशतः सागर, नदी, पहाड़, जंगल, प्रातःकाल, सायंकाल आदि प्राकृतिक सुघराइयों के कथन होने चाहिए। ऐसे ग्रन्थ सभी भाषाओं के शृंगार होते हैं। प्राचीन कवियों ने ऐसे ग्रन्थ कुछ कुछ बनाये भी परन्तु वर्त्तमान समय में लोगों का ध्यान इस ओर नहीं है।

प्राचीन काल में तुकान्तहीन छन्दों की रचना बिलकुल नहीं हुई, परन्तु वर्त्तमान समय में इस ओर रुचि देख पड़ती है। ऐसे छन्दों की रचना बहुत लाभदायक और गौरव की बात है। आशा है कि भविष्य में इस विषय की उन्नति होगी।

हमारे प्राचीन प्रथानुयायी कविगण पुराने ढर्रे पर अब भी चले जा रहे हैं। उनमें अधिकांश लोग स्फुट छन्द, शृंगार काव्य और शृंगारपूर्ण षट्ऋतु एवं रीति-ग्रन्थों की रचना अब तक उचित समझते हैं, विशेष कर नायिका-भेद की। ऐसी रचनायें उचित से बहुत अधिक हो गईं हैं और अब इनकी बिलकुल आवश्यकता नहीं है।

हमारे यहाँ नाटक-विभाग ने भी अब तक समुचित क्या कुछ भी उन्नति नहीं की है। भारतेन्दुजी ने इसको जन्मदान सा दिया, परन्तु अभी तक इस की कुछ भी उन्नति नहीं हुई है। आशा है कि कविजन इस ओर विशेषतया ध्यान देंगे, ख़ास कर इस कारण से कि नाटकों के उपयोगी विषय और अवर्णित कथायें प्रचुरता से प्रस्तुत हैं। उपन्यास-विभाग की हमारी भाषा में बड़ी ही कमी और साथ ही साथ भरमार है। असम्भव कथायें और अशिक्षाप्रद असत्य घटनायें तो हमारे यहाँ सैकड़ों उपन्यासों में कही गईं हैं, परन्तु पाठ योग्य उचित उपन्यासों की नितान्त ऊनता है। इस ओर हमारे उपन्यास-लेखकों को अवश्य ध्यान देना चाहिए। हमारे हज़ारों महापुरुषों के चरित्र गाये जाने को पड़े हैं। उन पर ऐतिहासिक उपन्यासों के लिखने से वर्त्तमान असम्भव कथाओं का कथन कहीं निकृष्टतर है। फिर प्रत्येक उपन्यास का कोई मुख्य भाव होना चाहिए। उसे हमारे किसी प्रधान अवगुण के हटाने अथवा गुण-प्राप्ति की शिक्षा देने का प्रबन्ध करना चाहिए। हमारे यहाँ समालोचना विभाग की भी समुचित उन्नति होनी चाहिए। आज कल की बहुतेरी समालोचनायें ईर्ष्याद्वेषजन्य होती हैं। समालोचना लिखने के लिये आलोच्य विषय से सहृदयता आवश्यक है। इस गुण और अच्छे परिश्रम के अभाव में आलोचनायें ज्योतिप्रदान के स्थान पर अन्धकार-वर्द्धन से भी बुरा काम करती हैं, क्योंकि वे कुछ न जानने वाले को मिथ्या ज्ञान प्रदान करती हैं। कोई अज्ञ भी मिथ्याज्ञानाभिमानी से कहीं श्रेष्ठतर है। समालोचना ग्रन्थ भी अब तक बहुत ही कम बने हैं।

आजकल के गद्य-लेखकों के सब से बुरे अवगुणों में से चोरी, सीनेज़ोरी, परावलम्बन, विचार-परतन्त्रता, अनात्मनिभरता आदि हैं। प्राचीन प्रथा के लेखक पुरानी लकीर के फ़क़ीर हो रहे हैं और नवीन प्रणाली वाले पाश्चात्य नवीन और प्राचीन लेखकों के दास। लेखकों में बहुत अधिक लोग यह भूल गये हैं कि उनके सिरों में भी एक एक दिमाग़ है। प्राचीन प्रथानुयायी लोग सभी प्राचीन बातों को सिद्ध किया चाहते हैं और नवीन प्रणाली के अवलम्बी प्रायः सभी प्राचीन मतों और लेखकों को प्राचीन अखि-

पिंजर (old fossils) समझते और पश्चिम के सम्मुख अपने देश के पूर्वजों एवं भाइयों को नितान्त मूर्ख मानते हैं। ये दोनों बातें बिल्कुल अशुद्ध हैं, ऐसा प्रकट है और सभी मानते हैं, यहाँ तक कि उपर्युक्त प्रकार के लेखक भी वचन द्वारा यही कहते हैं और समझते हैं कि वे इसी कथनानुसार चलते भी हैं, परन्तु वास्तव में उनके आचरण उनको उपर्युक्त दो विभागों में से एक में डालते हैं। वे अपने आप को भूले हुए हैं और यहाँ तक भूले हुए हैं कि पराये विचारों एवं सिद्धान्तों को ख़ास अपने ही न केवल कहने, बरन, समझने भी लगे हैं। इस प्रचंड मानसिक रोग (आदत) का निराकरण तभी हो सकता है जब मनुष्य अपने प्रत्येक मत के कारणों पर सदैव विचार रक्खे और समझता रहे कि उन कारणों में से उसके कितने हैं। यदि कोई शेक्सपियर को तुलसीदास से भी श्रेष्ठतर बतलावे, तो उसे समझना चाहिए कि उसमें उन दोनों के गुण दोष समझने की पात्रता है या नहीं और उसने उनके समझने का पूरा श्रम भी किया है या नहीं? यदि इन दोनों प्रश्नों में से एक का भी उत्तर नहीं है, तो उसे उपर्युक्त तुलनाजन्य ज्ञान को अपना मत न समझ कर पराया समझना चाहिए।

हमारे यहाँ गद्य का प्रचार थोड़े ही दिनों से हुआ है अतः अभी अनुवादों का बनना स्वाभाविक है। फिर भी अति सर्वत्र वर्जयेत् पर सदैव ध्यान रखना चाहिए।

हमारे बहुतेरे लेखक अनुवाद अथवा अनुकरण के अतिरिक्त कुछ लिखते ही नहीं और जिस ग्रन्थ को स्वतन्त्र कहते हैं प्रायः उसमें भी औरों से चोरी या सीनेज़ोरी निकल आती है।

सारांश यह कि आजकल गद्य की उन्नति हुई है परन्तु समुचित नहीं, नाटक विभाग अभी हीनावस्था में है परन्तु बढ़ता देख पड़ता है, पद्य की अवनति है और लेखकों में प्राचीन भारतीय अथवा नवीन पाश्चात्य प्रणालियों के अनुसरण में अन्ध-परम्परानुकरण का भारी दोष है।

—:o:—

यूनिवर्सिटी में संस्कृत शिक्षा पर विचार।

गत १४ अक्तूबर को बम्बई यूनिवर्सिटी के सिनेट का एक साधारण अधिवेशन हुआ था। सभापति का आसन वाइस-चॅंसलर मि० जस्टिस हीटन ने ग्रहण किया था। उसमें कई आवश्यक कार्य्यों के बाद प्रान्तीय सरकार के उस पत्र पर विचार आरम्भ हुआ जिस में उसने पण्डितों की शिक्षा के लिये पूना में संस्कृत के एक स्कूल स्थापित करने, संस्कृत शिक्षा का एक अलग विभाग खोलने और उसमें पदवियाँ देने के सम्बन्ध में यूनिवर्सिटी की सम्मति माँगी थी। पूना में खोले जानेवाले इस प्रस्तावित स्कूल के सम्बन्ध में सरकार ने लिखा था कि उसमें एक बड़ा पुस्तकालय रहेगा जिसमें डेकन कालेज की हस्तलिखित पुस्तकें भी रख दी जांयगी; प्राचीन पद्धति के अनुसार शिक्षा पानेवाले पण्डितों के सिवा वे ग्रेजुएट भी इस स्कूल में पढ़ सकेंगे जिन्हें पुरातत्त्व की खोज अथवा भिन्न भिन्न मुख्य विषयों के अध्ययन का शौक़ होगा; और पण्डितों के लिये अँगरेज़ी की थोड़ी आरम्भिक शिक्षा के सिवा ग्रेजुएट विद्यार्थियों के लिये कुछ जर्मन और फ़्रेञ्च भाषा की शिक्षा का भी प्रबन्ध कर दिया जायगा जिसमें उन लोगों को वर्त्तमान काल की आलेचना-पद्धति का भी कुछ ज्ञान हो जाय।

आर्ट फैकलटी और सिंडीकेट की सहमति से सर रामकृष्ण भाण्डारकर ने प्रस्ताव किया—कि "सरकार को इस बात की सूचना दे दी जाय कि उसने अपने पत्र में संस्कृत-शिक्षा के सम्बन्ध में जो उपाय बतलाये हैं, यदि उनके अनुसार प्रबन्ध कर दिया हो तो यूनीवर्सिटी यह नया विभाग खोलने और योग्य पदवियाँ देने के लिये तैयार है।" अपने प्रस्ताव की पुष्टि में श्रीयुत रामकृष्ण ने यह भी कहा कि मैं स्वयं

ओरिएण्टलिस्ट कान्फरेन्स में (जिसका अधिवेशन गत जूलाई सन् १९११ में शिमले में हुआ था और जिसकी सिफ़ारिश से बम्बई सरकार ने यह प्रश्न उठाया था) सम्मिलित हुआ था। उसमें यह प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकृत हुआ था। इस ढँग की शिक्षा से नये विद्वानों को बहुत अधिक सहायता मिलेगी। पुराने ढँग के पण्डितों और मैालवियों का नाश नहीं होना चाहिए। ऐसे पण्डित बड़े काम के होते हैं और उनसे तथा उनके ज्ञान से बड़े बड़े युरोपियन विद्वानों तक को बहुत अधिक सहायता मिलती है। यह कहा गया था कि ऐसे पण्डितों से इस नवीन विभाग के काम में विघ्न पड़ेगा, पर श्रीयुत रामकृष्ण ने इसका विरोध और खण्डन किया और कहा कि पण्डितों को उत्साहित करना और उन्हें योग्य पदवियाँ देना आवश्यक है और हम लोगों को इस विषय पर गूढ़ और सहानुभूतिपूर्ण विचार करना चाहिए।

मि० जमशेदजी मोदी ने इस प्रस्ताव का समर्थन किया। उन्होंने कहा कि प्राचीन काल की इस विद्या को बराबर जारी रखना चाहिए। यदि यह प्रस्ताव आज से २५ वर्ष बाद उठाया जाता तो मैं प्रिंसिपल परांजपे से सहमत होता, लेकिन अभी प्राचीन शिक्षा-पद्धति को नष्ट करने का समय नहीं आया है। बड़े बड़े युरोपियन विद्वान् तक इस श्रेणी के पण्डितों के रक्षण के पक्ष में हैं। उन लोगों को उत्साहित करके उनकी दशा और ज्ञान की उन्नति करनी चाहिए।

इस पर प्रि० आर० पी० परांजपे ने इस प्रस्ताव में यह संशोधन और परिवर्त्तन कराना चाहा कि यूनीवर्सिटी यह पद्धति तो स्वीकार नहीं करती, लेकिन यदि सरकार अपने पत्र में लिखे हुए ढँग पर प्रबन्ध कर दे तो वह लोगों को बी० ए० की डिग्री प्राप्त कर लेने के बाद संस्कृत अध्ययन के लिये एक नई डिग्री दे सकती है। प्रि० परांजपे ने इस प्रस्ताव को यूनीवर्सिटी के लिये हानिकारक बतलाते हुए उसका घोर विरोध किया। यूनीवर्सिटी का संगठन नये ढँग की स्वतन्त्र विचार की शिक्षा (Liberal Education) की उन्नति के लिए है, और प्रश्न यह है कि इस प्रकार की प्राचीन भाषाओं की शिक्षा उक्त शिक्षा के अन्तर्गत है या नहीं। यदि वह स्वतन्त्र विचार की शिक्षा के अन्तर्गत न हो तो यूनीवर्सिटी को उसे प्रोत्साहन न देना चाहिए। प्रिंसिल महाशय की सम्मति में प्राचीन भाषाओं की शिक्षा यूनीवर्सिटी की उद्दिष्ट शिक्षा के अन्दर नहीं आ सकती थी। उनकी सम्मति में ये दोनों प्रकार की शिक्षाएं परस्पर एक दूसरे के इतनी विरुद्ध थीं कि उनका परिचालन एक साथ हो ही नहीं सकता था। वर्त्तमान विचारों की कसैाटी पर वह शिक्षा नहीं ठहर सकती। यूनीवर्सिटी का उसकी सहायता करना अनुचित होगा। पण्डितों को अपना काम आप ही करने के लिए छोड़ देना चाहिए। यदि सरकार उन लोगों को उत्साहित करना या उन्हें सहायता देना चाहे, तो दे सकती है; यूनीवर्सिटी को उससे कोई सम्बन्ध न रखना चाहिए। स्वतन्त्र विचार की शिक्षा की हानि करके प्राचीन ढँग की ऐसी शिक्षा नहीं देनी चाहिए।

मि० के० नटरंजन ने प्रिंसिपल परांजपे के इस संशोधन का समर्थन किया। उन्होंने कहा कि मुझे इस बात का बहुत आश्चर्य्य है कि इस समय भी लोग पण्डितों की श्रेणी के संरक्षण का प्रस्ताव उठाते हैं। पण्डितों में काम की कुछ बातें हो सकती हैं, लेकिन उनकी शिक्षा-पद्धति इतनी हानिकारक है कि यूनीवर्सिटी को उनकी योग्यता की स्वीकृति में डिग्रियाँ कभी न देनी चाहिएँ। जो लोग जीवन का आज कल का उद्देश्य न जानते हों, यूनीवर्सिटी को उनकी योग्यता की स्वीकृति कदापि न करनी चाहिए। पण्डितों के विचार और उद्देश्य इतने संकुचित होते हैं और प्राचीन पद्धति की शिक्षा इतनी हानिकारक और नये ढँग की शिक्षा के इतनी विपरीत होती है कि यूनीवर्सिटी का उसे सहायता देना बहुत ही अनुपयुक्त होगा।

मि० शाप ने कहा कि भारत सरकार की सलाह से प्रान्तीय सरकार ने यह प्रश्न यूनीवर्सिटी के सामने पेश किया है। यूनीवर्सिटी को उस पर केवल अपनी सम्मति देनी चाहिए । भारत सरकार पण्डितों का सुधार नहीं किया चाहती बल्कि वह उन्हें केवल प्रोत्साहित करना चाहती है।

यहाँ तक वादाविवाद होने के बाद यह विषय आगामी १४ नवम्बर के अधिवेशन के लिए मुलतबी कर दिया गया।

—:०:—

वैज्ञानिक खेती ।

(ले० श्रीमती हेमन्तकुमारी देवी)

[पूर्व प्रकाशितांतर]

ज़मीन की बीमारियाँ ।

ज़मीन को उपजाऊ बनाने के लिये किसान लोग खाद डालते हैं। हर क़िस्म की खाद में खली जल्दी फायदा पहुँचाने वाली समभी जाती है। पर भांति भांति की खली के गुणों में बड़ा भेद है। यह नहीं कहा जा सकता इसे कितने किसान समझते हैं। सरसों, तिल, अलसी, रेड़ी, मूंगफली, नारियल, बिनैाला ग्रैार चिलगाेजा वग़ैरह तिलहन को पेरने पर जो भाग बाक़ी बच जाता है, वही खली खेतों में खाद के तैार पर डाली जाती है। हर एक चीज़ में कोई न कोई ख़ास गुण रहता है। अनाज कितना ही क्यों न पेरा जाय, उसमें कुछ न कुछ तेल रह ही जाता है। इस हिसाब से कहना चाहिए कि खली में भी थोड़ा बहुत तेल रहता है। पर मामूली किसान यह नहीं जान सकते कि किस खली में कितना तेल है। इसलिये खेतों में खली की खाद देने पर भी एकसा फ़ायदा दिखाई नहीं देता। तिलहन के बीज में जो जीवित ग्रैार अजीविक चीज़ें हैं, उनके विषय में यहाँ कुछ न लिख कर सिर्फ़ यही बतलाया जाता है कि खली में जितना ही ज़ियादा तेल होगा, खेती को उतना ही ज़ियादा नुक़सान होगा। खली में तेल रहने से वह जल्दी गल नहीं सकती। क्योंकि तेल की तासीर ही बचाने की है, बिगाड़ने की नहीं। इसी से चटनी ग्रैार अचार वग़ैरह में तेल डाला जाता है जिसमें वे बहुत दिनों तक रह सकें। इसको सभी लोग जानते होंगे कि अगर अचार में तेल न डाला जाय तो उसे सड़ते देर न लगे। मांसभक्षी लोग दूसरे दिन तक रक्खे रहने के लिए तेल में मांस मछली बनाते हैं। इस सिद्धान्त को कोई भी समझ सकता है कि तेल में चीज़ को बहुत दिन तक ठीक बनाये रखने की ताक़त है। तेल से मिली कोई चीज़ जल्दी नहीं सड़ गल सकती। ग्रैार ऐसी चीज़ पर हवा, पानी, सर्दी, गर्मी का असर भी जल्दी नहीं होता। बिना इन चीज़ों के अन्दर पैठे कोई चीज़ सड़ ही नहीं सकती। इससे साबित हुआ कि तेल से मिली हुई खली के सड़ने में देर लगती है। देखा गया है कि धीरे धीरे खली से तेल निकल कर ज़मीन में लगा करता है। इस अवस्था में खली तो हलकी ज़रूर हो जाती है; पर मिट्टी में तेल के लगने से खेत रोगी हो जाता है।

ऊपर लिखा जा चुका है कि तेल रक्षक है, नाशक नहीं। खाद खली की हो, या हड्डी, चमड़ा, नाख़ून, बाल, चर्बी, ग्लेसरिन किसी की भी हो ज़मीन के अन्दर जाकर जीवित ग्रैार अजीवित चीज़ों के सड़ने की राह रोकती है। बिना सड़ी चीज़ को पौधे चूस नहीं सकते। पानी की तरह पतली हालत में अगर तेल पौधे की देह में पहुँच जाय तो इससे उसे नुक़सान ही होगा। सरसों वग़ैरह तिलहन में तेल मिला दाना होता है; वह झाड़ को सोखने से नहीं होता वरन् पौधा तो ज़मीन से रसही लेता है; वही रस आगे तेल की सूरत में तबदील हो जाता है।

खेत में सिर्फ़ तेल मिली खाद डालने से मिट्टी को अम्ल रोग हो जाता है। अगर खेत में यह रोग

हो तो बिना तेज का चूना डालने से फ़ायदा होगा। चूना ही ज़मीन के अम्ल रोग की महौषधि है। अगर भूल से खेत में, ज़रूरत से ज़ियादा चूना गिर जाय; तो तुरन्त खली का चूरन डाल देना चाहिए। इससे चूने का तेज दब जाता है और कोई डर नहीं रहता।

कुछ लोग कहते हैं कि चूना भी पौधों की .खुराक है। ख़ास मौकों पर, ज़रूरत देख कर यद्यपि चूना डालना उचित है; पर इस बात का ध्यान रखना भी ज़रूरी है कि चूना न तो पौधों की खाद ही है न .खूराक ही। चूने का इस्तेमाल करने से ज़ियादातर धरती का रोग नाश हो जाता है और मिट्टी की तासीर भी बदल जाती है। एक ओर चूना खेत को तन्दुरुस्त करता है और दूसरी ओर मिट्टी का यवक्षारजन (nitrogen) निकाल कर उसकी उपज घटा देता है। इसलिये बड़ी सावधानी से इसे बर्तना चाहिए। चूने से एक फ़ायदा यह है कि ज़मीन के अन्दर जो ची.जें वगैरह सड़ी पड़ी हों; उन्हें वह अन्दर घुस कर सड़ा देता है—वे इस लायक होजाती हैं कि उन्हें पौधे आसानी से चूस सकें। इतना होने पर भी चूने की तेज़ी को दूर करने के लिए ज़मीन में खाद ज़रूर दे। बिना ऐसा किए खेत में अच्छी उपज न होगी। चूना देने के बाद कुछ समय तक ज़मीन .खूब उपजाऊ हो जाती है, यहाँ तक कि दो तीन साल की उपज एक ही साल में हो जाती है। बार बार चूना देने से खेत बिलकुल बिगड़ जाता है, कभी कभी तो उसे छोड़ ही देना पड़ता है।

—:०:—

षष्ठ अध्याय।

पौधों के रोग।

मामूली तौर पर पौधे दो क़िस्म के रोगों से घिरे रहते हैं। फंगस (Fungus)—यह पौधे के किसी हिस्से पर हमला कर अन्दर घुस जाता है और उसकी देह के तन्तुओं को कमज़ोर कर मार डालता है। यह उद्भिद .खुर्दबीन की सहायता बिना दिखाई नहीं दे सकता। इसका बीज वायुमण्डल, मिट्टी और पानी में रहता है। बीज अंकुरित होकर पौधे के कोष (cells) में रक्खी हुई सामग्री से तैयार होता है। फिर उससे एक धागा सा निकल कर वृक्षों में फैल जाता है। ये वृक्ष के भीतर रक्खी हुई चीज़ों को खा जाते हैं। इससे पौधे निस्तेज तथा रोगी हो जाते हैं। ये रोग पैदा करनेवाले, पौधे .खुद हवा, पानी और मिट्टी से .खुराक नहीं ले सकते; इस लिए दूसरे की जमा पर क.ब्ज़ा कर बैठते हैं! किसी जीवित पौधे का रस सोख कर या मरे हुए और सड़े गले पदार्थ पर जम कर अपना बसर करते हैं!!

(२) कीड़े, फतिङ्गे वग़ैरह भी वृक्षों के शत्रु हैं। कीटों के झुंड की मामूली ४ हालतें हैं। वे इस तरह हैंः—(१) झुंड, (२) कीट, (larva) मामूली ढँग में इसे कीट ही कहना चाहिए, (३) कोया, (४) तितली। जिन्होंने कभी रेशम के कीड़े देखे होंगे वे इन चारों हालतों को आसानी से समझ सकेंगे। कीट की अवस्था में ये कीड़ों के झुंड की सूरत में बढ़ जाते हैं। कोये से निकलने पर इनकी बाढ़ रुक जाती है। किसी किसी फतिंगे में ऊपर लिखी चारों हालतें दिखाई नहीं देतीं। कोई कोई कीड़े कोये की हालत में न जाकर तितली बन जाते हैं। पूरी बाढ़ हो चुकने पर मामूली छः टाँगें या पाँव और दो सूँड़ें इनके होती हैं। बदन तीन हिस्सों में बँटा रहता है—सिर, छाती और पेट जिस में टाँगें लगी रहती हैं। इनके माथे की गढ़न अजीब क़िस्म की होती है। कुछ कीड़े मुँह से काटते हैं, कुछ सोखते हैं और कुछ दोनों काम करते हैं। सभी कीड़ों में दो जातियाँ स्त्री और पुरुष के भेद से हैं। स्त्री जाति के कीड़ों की देह, पुरुष जाति के कीड़ों की अपेक्षा कुछ भारी होती है। प्रायः कीड़े अंडे ही देते हैं।

बीज की सफ़ाई—बीज में भी कीड़े पड़ जाते हैं। इस लिये बीज और कलम वग़ैरह को लगाने, से पहिले .खूब साफ़ कर लेना ज़रूरी है। बीज वग़ैरह को साफ़ करने या रोग से बचाने के लिये उनमें कीड़ों को मारनेवाली या जीवाणुनाशक कुछ चीज़ें मिला देनी चाहिएँ। इन चीज़ों में विषैलापन बदबू

ग्रौर तेज़ बू हो। तूतिया मिले पानी में बीज या कलम को डुबोकर उसी समय पिसे हुए विष, चूना, खार ग्रौर सरसों या रेंड़ी की खली के साथ मिलाकर, बीज को सुखाकर उसी दिन बोना चाहिए या कलम को रोपना चाहिए। अगर एक छटाँक तूतिये का चूरन मिलाना हो तो २०० छटाँक यानी १२—१३ सेर गरम पानी में उसे घोलना चाहिए। एक दिन के अन्दर ही इस तूतिया-मिले पानी का इस्तेमाल करे। विष बहुत ही थोड़ा डाले। अगर एक मन चूर्ण खली ग्रौर ५ सेर चूर्ण खार का इस्तेमाल किया जावे तो ख़ूब महीन पीस कर एक छटाँक ज़हर इनके साथ इस्तैमाल करना उचित है। तूतिये के पानी में बहुत देर तक बीज, कलम या जड़ को रखने से उसकी पैदा होने की ताक़त मारी जाती है। इस लिए उसमें एक मिनिट तक ही डुबोकर चूर्ण ग्रौर सूखी खाद से सुखा ले।

ग्रौर ग्रौर तरकीबें—देखा गया है कि कभी कभी अच्छी तरह जोत कर उम्दा बीज बोने पर भी कीड़े लग गये। जाँच करने पर मालूम हुआ कि रात को कीड़े आकर पौधे टहनियों ग्रौर पत्तियों पर अण्डे देकर चले जाते हैं। इन अंडों में से कीड़े निकल कर फूल, पत्ती खा जाते ग्रौर रस पीकर फसल को बिगाड़ते हैं। इसकी दवा यह है कि रात को खेत के किसी तरफ़ जगह बदल आग जलाते रहने से ये कीड़े घट जाते हैं। जेठ, असाढ़ ग्रौर कातिक के महीनों में कीड़े ज़ियादा बढ़ते हैं। इन्हीं दिनों में आग जलाने से कीड़े रोशनी की तरफ़ खिँच कर आग में जल मरते हैं। टिड्डियाँ दल बाँध कर एक सूबे से दूसरे सूबे तक धावा मारती हैं; जिस खेत में बैठ गईं; वहाँ सब स्वाहा कर दिया। अगर कुछ देर पहले मालूम हो जावे कि टिड्डी दल आरहा है; तो खेतों में जाकर हल्ला मचाने ग्रौर पीपा बजाने से वे भाग जाती हैं।

कुछ दिनों तक ठहरनेवाली फ़स्ल के पेड़ों में जैसे चा ग्रौर कपास वग़ैरह अगर कीड़े लग जावें तो संध्या के समय पाट या फूस की लकड़ी जला कर पेड़ में छुआने से कीड़े भाग जाते हैं। इससे पेड़ कुछ कुछ झुलस तो ज़रूर जाता है पर जल्दी पनप उठता है। अगर एक बार ऐसा करने से कीड़े पिण्ड न छोड़ें तो दुबारा यही काम करना चाहिए। आग से कीड़ों के महीन बीज भी मारे जाते हैं। पेड़ को आँच दिखाने की एक कल भी है। यह एक अस्बेस्टस (Asbestos) नामक अदह्य पदार्थों से बना हुआ गोला है; जो एक छड़ी में लगा मिट्टी के तेल में भिगोकर जलाया जाता है।

पौधे में कीड़े—अगर बैंगन ग्रौर गोभी वग़ैरह में कीड़े लग जावें तो ज़हर, चूना ग्रौर खार को महीन पीस कर पोटलो में बाँध ले। ऐसी २०—२० पोटलियाँ एक लम्बे बाँस में बाँध कर पौधों के ऊपर धीरे धीरे ठोंक ठोंक कर वह बुरादा गिराता जावे। १ हिस्सा ज़हर, १०० हिस्से चूना ग्रौर इतना ही खार इस काम में लावे। बाँस या लाठी के दोनों छोर पकड़ कर अगर दो आदमी छिड़कें; तो थोड़ी ही देर में १ बीघा ज़मीन ज़हर से छिड़की जा सकती है। जब बैंगन ग्रौर गोभी फल रही हो, या ग्रौर कोई शाक सब्ज़ी खाने की हालत में आरही हो; तब भूल कर भी इस तरकीब से काम न लेना चाहिए।

मिट्टी के भीतर कीड़े दो क़िस्म के होते हैं—(१) कौरा ग्रौर (२) चौरा। चौरा जाति के कीड़े रात को निकल कर पेड़ ग्रौर पत्ती खाकर पौधे का नाश कर देते हैं, ग्रौर कोरा रात दिन मिट्टी में ही रहकर पौधे की जड़ काटते रहते हैं। जब यह पतङ्ग की सूरत में होता है तब रात को निकल कर पत्ती खाजाया करता है। मिट्टी के इन कीड़ों को मारने के लिये मिट्टी के तेल या रेंड़ी के तेल के अर्क़ को पिचकारी से छिड़कना चाहिए। मिट्टी के तेल का अर्क बनाने की रीति यह है—मक्खन निकले हुए आधी बोतल दूध में १ बोतल मिट्टी का तेल मिलाकर १० मिनट तक हिलावे। यह मिली हुई दवा ५० बोतल पानी में मिला कर पिचकारी के ज़रिये पेड़ की जड़ों में डाले। इससे कीड़े

मर जांयगे। पिचकारी का काम दमकले से भी लिया जा सकता है। अगर कल से सींचना हो तो रात ही का समय ठीक है, क्योंकि रात को कीड़े मिट्टी से निकल कर पेड़ पर चढ़ते हैं। रेंड़ी के तेल को सोडे के साथ गरम करके हिलाने से रेंड़ी के तेल का अर्क़ तैयार होता है। यह भी ऊपर लिखी रीति से छिड़का जाता है।

अगर पेड़ के ऊपरी हिस्से में कीड़ा लग कर फ़सल को ख़राब करता हो; तो यही अर्क़ कल के ज़रिये या और किसी ढँग से उस पर छिड़क देना चाहिए। तम्बाकू उबला हुआ पानी, हींग का पानी, हल्दी और पिसा हुआ मिर्च छिड़कने से भी कीड़े भाग जाते हैं या मर जाते हैं। महुए की खली जला कर उसका धुआँ देने से भी कीड़े भागते हैं।

जब पेड़ १ फुट से ऊँचे हो जावै तब पालतू जानवर मुर्गी और पेरू वग़ैरह उसमें छोड़ दिये जावें। वे कीड़ों को चुग लेते हैं। तम्बाकू और बैंगन की पत्ती में कीड़े लगने पर यही उपाय करना चाहिए। छोटे पेड़ों में मुर्गा वग़ैरह छोड़ देने से फ़ायदा होता तो है पर पेड़ टूट जाते हैं।

हरदा लगना—ज़मीन में पानी रह जाने पर या अच्छी तरह सूर्य्य की किरणों के न पड़ने से यह रोग होता है। धान के सिवा और कोई फ़सल बँधे हुए पानी में रह कर स्वस्थ और ताज़ी रह कर बढ़ नहीं सकती। पाट, अरहर, भुट्टा, ज्वार, गन्ना वग़ैरह के पौधे पानी में घिरे रहने से रोगी हो जाते हैं। बैंगन और मिर्चा के खेत में अगर पानी भरा रहे, तो वे मर जाते हैं। इसलिये पहले ही ऐसा इन्तिज़ाम कर दिया जावे जिसमें बरसात में वहाँ पानी जमा न होने पावे। पेड़ की जड़ की मिट्टी को खोद देने से ज़मीन पोली हो जाती है। इससे जड़ें आसानी से अपनी ख़ुराक पा सकती हैं—पौधा सतेज हो जाता है। जड़ के पास मिट्टी में अगर कीड़े मकोड़े होते हैं तो वे भी खोदने से भाग जाते या मर जाते हैं। सूर्य की किरणें काफ़ी तौर पर वहाँ पड़ सकती हैं। इसलिये पेड़ को दुरुस्त करने के उद्देश्य से जड़ के पास की मिट्टी को कभी कभी कुदाली से खोदना लाभदायक है। अब तक कोई अच्छा उपाय नहीं जाना जा सका है जिससे गेहूँ का हरदा रोग दूर किया जा सके। इस रोग की जड़ गेहुँओं के बीज के साथ ही आती है; इसलिये बोने से पहिले उसे तूतिये के पानी में धो लेना चाहिए। धान, भुट्टा और ज्वार के रोग भी इसी जाति के हैं। तूतिये के पानी में इनके बीज धो डालने से ही फ़ायदा होगा।

बीज रक्षा—कई तरकीबों से कीड़ों का नाश करने पर भी फ़सल काटने समय बिना कीड़ों का अनाज पाना सम्भव नहीं है। फ़सल में कीड़े के अंडे कुछ न कुछ रह ही जाते हैं। अगर अनाज सावधानी से साफ़ कर न रक्खा जाय, तो बीज को अंडे से निकल कर कीड़े, भण्डार में ही खा जाते हैं। सच तो यह है कि किसान भुट्टे, गेहूँ और अनाज के बीज की कीड़ों से रक्षा नहीं कर सकते। इसलिए कीड़ों के जूँठे बीज को चौगुना बोने पर भी; कभी काफी फसल नहीं होती। बीज के अच्छे बनाये रखने का उम्दा उपाय कारबन बाइ-सलफाइट (Carbon bisulphite) अर्क़ का व्यवहार करना है। ४० मन बीज को १ सेर कारबन बाइ-सलफाइट बचा सकता है। इस अर्क में जलाने की तासीर है; इसलिये भूलकर कभी इसके पास आग या दीया न ले जावे। एक बड़े बर्तन में अच्छी तरह सूखे हुए बीज को पोटली में बाँध कर रख दे; ऊपर से एक प्याला अर्क डाल कर उस बर्तन का मुँह गोबर से बन्द कर दे। घंटे भर में बीज को निकाल कर टीन के बर्तन या नमक के थैले में रख देने से कीड़े न रहेंगे। थैले को नमक के पानी से धोकर सुखा लेने पर उसमें कीड़े नहीं जा सकते। किसी बर्तन में बीज भर कर ऊपर से नीम की पत्ती डाल दी जाय, तो कीड़े लगने का डर न रहेगा।

धान—चावल में जो कीड़े देखे जाते हैं, उनका वैज्ञानिक नाम कैलंड्रा अक्सिजी calundra oxyzeae है। यद्यपि इससे खेत में धान के पौधों को कोई नुक़सान नहीं होता, पर घर में जमा किये हुए धान

के ये भारी दुश्मन हैं। भूसी से छिपे चावल को ये नुक़सान नहीं पहुँचा सकते पर साफ़ चावलों पर तो ये बेतरह टूटते हैं। इनका डील ½ इंच से कुछ बड़ा होता है। इनके काले परों पर ४ लाल बिन्दु होते हैं—यही इनकी पहचान है। गेहूँ और भुट्टों पर इनका जी चलता है।

इन्हें दूर करने के लिए बाइ-सलफाइट आफ कारबन, नीम की पत्ती और गन्धक का इस्तेमाल होता है। पर यह अभी तक साबित नहीं हो सका कि इनमें कौन चीज़ सब से अच्छी है। जिस स्थान में कीड़े एक बार लग चुके हों; वहाँ पर फिर अनाज को न रखने और कूड़ा, धूल वग़ैरह न रहने देने से भी कीड़े नहीं लगते।

बालेश्वर और चटगाँव में धान के बीज जमने पर एक क़िस्म का कीड़ा (cutworms Agrotis Suffura Habee) अंकुर को काटता है।

इस जाति का कीड़ा जिन जिन चीज़ों के पौधों में लगे; अंकुर निकलने से ही उनमें पेरिस ग्रीन (Paris green) नाम के विषैले पदार्थ का पानी छिड़क देना चाहिए। इससे पौधे की पत्ती खाकर कीड़ा मर जायगा। बाकरगंज, कटक, हजारीबाग़ और अन्य स्थानों भी धान में एक मूया (Leptocorisa Acuta Thumb) नाम का कीड़ा लग जाता है। बैशाख महीने के आरम्भ में जब पानी बरसता है (क्योंकि उड़ीसा में इस समय वर्षा होने लगती है) तो धान के बीज या अंकुर को ये कीड़े खा डालते हैं। जिस ओर हवा का ज़ोर हो; उसी ओर कूड़ा करकट जलाने से धुआँ फैल कर कीड़ों के ज़ोर को घटा देता है।

एक दूसरे क़िस्म का कीड़ा (Hispa Aenexeus Baly) बरसात में धान के खेतों में होता है। यह पेड़ की पत्ती और छाल को भक्षण कर भीतरी तन्तु निकाल देता है। यह सारी फ़सल को बर्बाद नहीं करता। मामूली तौर पर इस कीड़े के हमले से फ़ी सदी १० से ५० हिस्से तक फ़सल मारी जाती है। इसके दूर करने के दो उपाय हैं:—सब से पहले खेत का पानी निकाल देना चाहिए। देखा गया है कि उसी खेत की फ़सल पर इन कीड़ों का ज़ियादा ज़ोर रहता है; जिसमें पानी भरा रहता है। दूसरा उपाय धुआँ देना है, जिससे इनकी मृत्यु होती है।

भुट्टा—इसमें भी ऊपर लिखा उद्भिद् जाति का रोग होता है। यह ज़मीन के नज़दीकी पेड़ के हिस्से पर हमला करता है। पेड़ के सारे हिस्सों में छोटे कोये फूले हुए दीख पड़ते हैं। फटने पर इन्हीं हिस्सों से एक क़िस्म की काले रंग की पतली चीज़ बहा करती है। जब फल को यह रोग हो जाता है तब उसमें दाने नहीं पड़ते; सिर्फ़ काले रंग की बुकनी नज़र आती है। यहाँ सैकड़ों खेतों में, जहाँ भुट्टे उपजते हैं यह रोग देखा जाता है। इससे किसानों का बहुत नुक़सान होता है। यह रोग एक पेड़ से दूसरे में लग कर पूरे खेत में फैल जाता है। इसलिए अगर इस रोग के होने का किसी पेड़ में शक हो, तो फ़ौरन उसे उखाड़ कर जला देना चाहिए। बोने से पहले बीज में से फ़ी सदी दो हिस्से अगर कसीस के पानी में तीन चार घंटे तक डुबो रक्खें; तो यह रोग होता ही नहीं।

गन्ना—कई वर्ष पहले रोग के कारण गन्ने की खेती बम्बई के सूबे से एक तरह उठा दी गई थी। इस रोग का नाम धासा (Daetraea Basharatis Fabur) है। कहीं कहीं किसान इसे मजेरा भी कहते हैं। यह कीड़ा डंठल में घुस कर रेशा खाता है। सन् १८५७ ई० में बङ्गाल के हुगली, रंगपुर और वर्द्धमान ज़िलों में होने वाली लाल बम्बैया ईख इस कीड़े के मारे बिलकुल बिगड़ गई थी। जब पानी की कमी होती है; तभी यह रोग देखा जाता है। इसके अतिरिक्त एक ही जाति का गन्ना यदि बार बार एक ही खेत में बोया जाय, तो कुछ दिनों में पतला होकर वह इस रोग से ख़राब हो जाता है। जिन पेड़ों में इस रोग के लक्षण दीख पड़ें, उन्हें उखाड़ कर खेत से दूर लेजा कर जला दे; और फ़सल कट जाने पर खेत

का कूड़ा कर्कट हटवा दे। इस से फिर इसका डर नहीं रहता।

गन्ने का दूसरा दुश्मन फफूंदी है। जब गाँठ से अंकुर निकलता है; तब फफूंदी से बड़ा नुक़सान होता है। अगर खेत में भरपूर पानी दे दिया जाय, और वह अच्छी तरह गोड़ दिया जाय; तो इसका ज़ियादा डर नहीं रहता। पर मिट्टी का तैल इसकी सब से बढ़िया दवा है। फफूंद इसकी बदबू को बर्दाश्त नहीं कर सकती। बोने से पहले गन्ने के टुकड़ों को मिट्टी के तैल में पानी मिला कर भिगो देने से फिर फफूंदी का डर नहीं रहता।

आलू—बम्बई, बंगलोर, नीलगिरी और बङ्गाल के आलुओं में कीड़े हो जाते हैं। पेड़ का ऊपरी हिस्सा जब सूखने लगे, तब जानना चाहिए कि इसे रोग हो गया। इस वक्त आलू की बाढ़ मारी जाती है। आलू सड़ने से बदबू फैलती है। आलू काटने पर उसमें काले काले गोल दाग़ दीख पड़ते हैं। खेत से खोदे जाने पर ताज़े आलू तो खाये जा सकते हैं; पर ये ठहर नहीं सकते, सड़ जाते हैं।

बचाने के उपाय—सदा उम्दा बीज बोना चाहिए। अगर एक ही क़िस्म का आलू बहुत दिनों तक बोया जाय, तो यह रोग अवश्य होगा। प्रति बीघे ७॥ सेर तूतिया, १२ छटाँक चूना, और ४० मन ७ सेर पानी डालने से इसका डर घट जाता है। किसी काठ के बड़े बर्तन में, पोटली में तूतिया बाँध कर डाल देने से गल जावेगा; किसी दूसरे बर्तन में चलनी से चूने को छान कर तूतिया में मिला दे। बाक़ी पानी इसी तूतिया के पानी में मिला कर सादे खेत को सींच दे।

आलू में एक और रोग होता है जिससे पत्ती सिकुड़ जाती है। फिर बाढ़ बन्द होकर पौधा मर जाता है। जिन पेड़ों में इसके होने के आसार दिखाई दें; उन्हें उखाड़ कर जला डालना चाहिए। अगर ज़ियादा फैल जावे; तो फ़ी सैकड़े ५ हिस्से कसीस मिला कर पिचकारी के ज़रिये खेत भर में पानी छिड़क दे। पहले से सावधान रहने पर यह रोग दूर हो सकता है।

लंडन पारपल (London purple)—१० सेर मैदे के साथ ३—४ छटाँक लंडन पारपल मिलाकर १ पोटली में बाँध ५ मन पानी में मिलाने के बाद वृक्ष में सींचना चाहिए। आम के कीड़े भी इससे जाते रहते हैं।

पैरिस ग्रीन (Paris green)—७ या ८ छटाँक पैरिस ग्रीन १० सेर मैदे के साथ मिलाकर या ५ मन पानी के साथ लंडन पारपल की तरकीब से इस्तेमाल करे।

कारबोलिक एसिड—१०० हिस्से पानी में एक हिस्सा एसिड मिलाकर पेड़ की जड़ और पत्तियों में छिड़के।

कैरोसिन और दूध—आठ हिस्से दूध के साथ १ हिस्सा मिट्टी का तैल मिलाकर इस्तैमाल करने से कीड़े मर जाते हैं।

तम्बाकू का पानी—तम्बाकू की पत्ती को पानी में उबाल कर पेड़ में छिड़क देना चाहिए। इसकी कोई नाप मुक़र्रर नहीं। ज़रूरत देख कर इस्तेमाल करे।

—:o:—

सप्तम अध्याय

रबी अथवा जाड़े की फ़सल।

गेहूँ।

युक्त प्रदेश में बहुत क़िस्म की गेहूँ की खेती होती है। गेहूँ रबी के अनाज में गिनी जाती है। बलुई अथवा दोमट ज़मीन से मटियारी ज़मीन गेहूँ के लिये अच्छी समझी जाती है, क्योंकि जिस समय इसकी खेती होती है उस समय बरसात नहीं रहती। बलुई या दोमट ज़मीन का रस जल्दी सूख जाता है—तरी नहीं रहती। ऊँची ज़मीन से नीची ज़मीन अच्छी होती है। युक्त प्रदेश में बहुत उम्दा जमीन में दूसरे या तीसरे साल गोबर की खाद दी जाती है। गोबर की तादाद १०० मन होनी चाहिए। कहीं

कहीं, जैसे बिजनौर, फ़तेहपुर, गोरखपुर में ज़मीन के ऊपर भेड़ी बैठा कर ज़मीन को तैयार किया जाता है। मेरी राय यह है कि नीची ज़मीन में हड्डी का चूरा और ऊँची ज़मीन में मिली हुई खाद डाली जाय।

बरसात के अन्त में क्वार से कातिक तक ज़मीन को अच्छी तरह तैयार करना चाहिये। गेहूँ के खेत में ८ या १० दफ़ा हल चलाना उचित है। गोरखपुर ज़िले में १० दफ़ा ज़मीन को जोता जाता है। पर बुँदेलखण्ड की काली ज़मीन में दो या तीन दफ़े हल चलाना काफ़ी समझा जाता है। डूथि और फुलर साहब की राय यह है कि बरसात के शुरू में ज़मीन को अच्छी तरह जोत कर पड़ा रहने देना चाहिए, ताकि अच्छी तरह वर्षा का पानी उसमें जज़्ब हो जाय।

ज़मीन को ७ या ८ इंच गहरा जोतना उचित है, क्योंकि गेहूँ की जड़ ज़मीन के ऊपर न फैल कर ज़मीन के भीतर तक जाती है। ज़मीन कमज़ोर होने पर अच्छी तरह खाद डालना उचित है। जोतने के समय गोबर की खाद, और पेड़ बड़ा होने पर ज़मीन में सोरा या नमक डालना चाहिये। नीची ज़मीन जो वर्षा के पानी में डूब जाती है उसमें खाद डालने की ज़रूरत नहीं होती, और अगर खाद की ज़रूरत समझी जाय तो जोतने के समय हड्डी का चूरा दिया जाय। दानेदार खाद वर्षा के समय ज़मीन में छिड़क देनी चाहिये, क्योंकि ऐसा न करने से वह जल्दी गलती नहीं है। ज़मीन की हालत के अनुसार फ़ी बीघा ५ सेर से १५ सेर तक सोरा या नोन और २ मन हड्डी का चूरा दिया जा सकता है।

कातिक का महीना बीज बोने का समय है। बीज साधारणतः छिड़ककर बोया जाता है। परन्तु कृषितत्त्व जानने वालों की राय यह है कि नाली बना कर बीज बोने से फ़सल ज़्यादा होती है। बिना खाद या पानी की ज़मीन से फ़ी बीघा २।३ मन अनाज मिलेगा। पर खाद और पानी देने से फ़ी बीघा ९।१० मन तक फ़सल की आशा की जा सकती है। फ़्रांस से लौट कर आये हुए कृषि-तत्त्ववेत्ता बाबू प्रबोधचन्द्र दे ने फ़ी बीघा आध मन सोरा डाल कर और ज़मीन में दो दफ़े सिँचाई करने पर नौ मन के हिसाब से पैदावार पाई है। फ़ी बीघा सवा पाँच सेर बीज लगता है। उम्दा तरह खेती करने से साढ़े सात सेर बीज लगेगा। बीज कीड़े का खाया हुआ न होना चाहिये। इस पर विशेष ध्यान रहना ज़रूरी है। नाली बनाकर उसमें बीज बोने से पानी सींचने का विशेष सुभीता होता है। बहुधा देसी किसानों की राय यह है कि गेहूँ का बीज पतला बोने से लाभ ज़्यादा होता है। यह राय ग़लत है। क्योंकि बीज पतला बोने से सूर्य की धूप से ज़मीन सूख जाती है और पेड़ का भी रस सूख जाता है, जिससे वह कमज़ोर भी हो जाता है। पर घनी बोआई करने से इतनी हानि नहीं पहुँच सकती।

युक्तप्रदेश में गेहूँ, जौ अथवा चने के साथ बोई जाती है। रुहेलखण्ड में गेहूँ के खेत में एक दफ़े और दोआब की ख़ुश्क जमीन में आठ दफ़े पानी सींचा जाता है। साधारणतः चार दफ़े सींचना काफ़ी होगा। बहराइच ज़िले में जब देखा जाता है कि पेड़ में बहुत पत्ती होने लगीं तब हँसिया से पेड़ का ऊपरी हिस्सा काट लिया जाता है। यह तरीका पेड़ के तीन फुट ऊँचे होने पर काम में लाया जाती है। बहराइच का यह तरीका बिरला ही समझा जाता है।

गेहूँ में एक तरह की बीमारी होती है। इस बारे में 'कीड़ा और रोग का प्रकरण' देखो। यहाँ उसका फिर उल्लेख ज़रूरी नहीं है।

फागुन से चैत महीने के बीच में गेहूँ पक जाती है और पेड़ भी सूख जाता है। तब उसको काट कर बैलों से मड़ाकर फसल उठाई जाती है। टोकरी में भर कर ऊपर से हवा की तरफ़ छोड़ने से अनाज नीचे गिर पड़ता है और गर्दा कूड़ा उड़ जाता है। पीछे गेहूँ सूप से झाड़ ली जाती है।

जौ।

इसकी गिनती रबी फसलों में है। वर्षा के पीछे ज़मीन को अच्छी तरह तैयार करना चाहिये।

ज़मीन को गहरा जोतना ज़रूरी है। दो दफ़े जोतने के बाद ४ या ५ गाड़ी गोबर डाल कर ज़मीन को फिर जोत कर खाद की मिट्टी के साथ अच्छी तरह मिला दे। युक्तप्रदेश में बलुई ज़मीन में जौ की खेती होती है। इसलिये ज़मीन में ज़्यादह खाद नहीं दी जाती। अगर जौ के बाद गेहूँ बोई जाय तो जौ की खेती हूबहू गेहूँ की तरह की जाती है, अगर चना या मटर बोया जाय तो जौ की खेती में खाद और पानी कम दिया जाता है। युक्तप्रदेश में बोने के पहले चार दफ़े, ज़मीन को जोतते हैं।

कातिक के महीने में बीज बोया जाता है। चैत बैसाख में जौ पक जाता है। फी बीघा दस सेर बीज लगता है। युक्तप्रदेश में ज़्यादातर चना, मटर या गेहूँ के साथ जौ बोया जाता है। सरसों भी १५ फुट की दूरी पर बोया जाता है। जौ की खेती में पानी नहीं सींचा जाता। पर पानी सींचने से फ़सल अच्छी होती है। बीज बोने के ५ या ६ दिन बाद अंकुर निकल आता है। पौधा कुछ बड़ा होने पर हर बीघे में सात आठ सेर शोरा छिड़क देना अच्छा है। ज़मीन अगर तर न रहे तो शोरा देने से कुछ फल नहीं होता।

युक्तप्रदेश में दो दफ़े पानी सींचा जाता है। पर जहाँ जहाँ जाड़े में पानी बरसता है, जैसे मेरठ, रुहेलखण्ड, वहाँ पानी कम दिया जाता है।

पेड़ काट कर जमा करके बैल वगैरह जानवरों से मड़ाकर अनाज निकाल लिया जाता है। फ़ी बीघा ५ मन से २० मन तक अनाज मिलता है।

खेती का ख़र्चा

चार बार जुताई	३)
,, ढेला तुड़ाई	॥)
बीज ६० सेर (एक एकड़ में) ...	२॥)
बोआई	॥।–)
मड़ाई	३)
साफ कराई	।=)
पानी सिंचाई	४)
ज़मीन का लगान	५)
कुल	२०॥।)

खाने के लिये जो जौ तैयार किया जाता है वह पहले ओखली में ख़ूब कूटा जाता है, पीछे सूप से फटकारा जाता है। इसमें गेहूँ या चने का आटा मिला कर नमक, लहसुन, प्याज़, और लाल मिर्च मिला कर खाया जाता है। भारत के ग़रीब आदमी इसी तरह का खाना खाते हैं। जो जौ अच्छी तरह साफ नहीं होता है वह विलायत के बने हुए बार्ली से खेतसार में उम्दा है। पर जिसको बद-हज़मी की बीमारी है उसको वह हज़म नहीं हो सकता।

जौ से दारू तैयार होती है। युरोप में इससे शराब बनाई जाती है।

जई।

कहा जाता है कि जई को चंगेज़ख़ाँ हिन्दुस्तान में लाया। मुग़ल सम्राटों को भी जई का नाम मालूम था। आईन अकबरी में भी जई का उल्लेख देख पड़ता है। आदमियों के लिये जई अच्छा खाना नहीं है। पकने पर अनाज गिर जाने के डर से यह कच्ची ही काटी जाती है। भारत में घोड़ों को खिलाने के लिये जई का इस्तैमाल किया जाता है। जई का डंठल जानवरों के खाने के लिये धान या गेहूँ के डंठल से भी उम्दा है। युक्तप्रदेश में थोड़े दिनों से इसकी खेती हो रही है। कनटुन्मेंट और घोड़शाल के आस पास घोड़ों के लिये उसकी खेती की जाती है। मेरठ और रुहेलखंड ज़िले में इसकी खेती ज़्यादा होती है।

जौ से जई की खेती में किसी क़िस्म का फ़र्क नहीं है। अच्छी ज़मीन में इसकी खेती होती है। यदि खेत अच्छी तरह सींचा जाय तो जाड़े के महीनों में घोड़ों को खिलाने के लिये जई तीन दफ़े काटी जा सकती है। फिर यह इतनी बढ़ती है कि एक दफ़े इससे थोड़ा सा अनाज भी मिल सकता है। जई की खेती में ज़मीन की उपजाऊ शक्ति जल्द घट जाती है। एकही ज़मीन में जितनी दफ़े इसकी खेती होगी

उतनी दफ़े इसकी पैदावार घट जायगी। एक एकड़ बे सींची हुई ज़मीन से १० मन, और खिंची हुई ज़मीन से १४ मन अनाज पैदा हो सकता है।

समतल प्रदेश में सितम्बर से अक्तूबर तक जई बोई जाती है। मुख्य बात यह है कि वर्षा बन्द होने पर ही इसका बीज बोना चाहिए। बंबई में जई रबी की फसल में गिनी जाती है, और इसकी खेती में ख़ूब सिंचाई होती है। जिस ज़मीन की मिट्टी बहुत चूर हो और पानी सींचने का सुभीता भी हो, ऐसी ज़मीन पर जई की खेती अच्छी होती है। एक एकड़ ज़मीन में ५० सेर बीज छिड़क कर बोया जाता है। साढ़े तीन महीने से चार महीने के अन्दर अनाज पक जाता है। किसी तख़्ते या बैल से मड़ा कर अनाज को अलग किया जाता है। बंगाल से जई मारिशस में ज़्यादातर भेजी जाती है।

खरीफ अथवा गर्मी की फसल।

धान, चावल।

धान पृथ्वी भर पर सब जगह पैदा होता है, पर हिन्दुस्तान में इसकी पैदावार ज़्यादा होती है। हिन्दुस्तान में बहुत क़िस्म का धान पैदा होता व देख पड़ता है। उनमें से जो युक्तप्रदेश में पैदा होते हैं उन्हीं का वर्णन इस पुस्तक में किया जायगा। यहाँ बासमती, बाँसफल, भिलमा उम्दा धान समझे जाते हैं। सिउनधी, सिमाढ़ा दूसरे दर्जे के धान गिने जाते हैं। तीसरे दर्जे के धान में साढ़ी उम्दा है।

समय—बोने और अनाज बटोरने के समय में धान में जितना फर्क देख पड़ता है उतना और किसी अनाज में नहीं। जनवरी से जुलाई तक धान बोया जाता है। ज़्यादातर जून से अगहन महीने तक छिड़क कर यह बोया जाता और जून से नवंबर तक रोपा जाता है। जो धान छिड़क कर बोया जाता है, वर्षा शुरू होने से ही उसका काम शुरू हो जाता है, और वह दो या ढाई महीने में यानी भादों या कार में काटने के लायक हो जाता है। इसलिये उसको भदोई या क्वाँरी धान कहते हैं। यह धान ६० दिन में तैयार हो जाता है।

जो धान रोपा जाता है, अर्थात् जिसे जड़हन धान कहते हैं वह वर्षा शुरू होने पर अलग किसी ज़मीन में बीज की तरह बोया जाता है। जब बहुत अंकुर निकल आता है तब वह दूसरे खेत में रोपा जाता है। जड़हन धान अगहन में काटा जाता है। इसलिये उसको अगहनी धान कहते हैं। एक क़िस्म का धान है, जिसे जेठी या बोरो धान कहते हैं। यह जनवरी में बोया जाता और फर्वरी में रोपा जाता तथा मई में काटा जाता है।

धान अकेला बोया जाता है। कभी कभी जुआर भी इसके साथ बोई जाती है।

खाद—सख़्त मटियार ज़मीन या इस तरह की ज़मीन जिसमें पानी ठहरता है, धान के लिए फ़ायदेमंद है। ऊसर ज़मीन में भी यदि पानी का बंदोबस्त रहे तो धान हो सकता है। जो धान छिड़क कर बोया जाता है उसके लिए अकसर कोई खाद नहीं दी जाती। जो धान रोपा जाता है उसके बीज की ज़मीन में खाद दी जाती है। मगर बीज की ज़मीन से पौधा उठाकर जिस ज़मीन में रोपा जाता है उसमें किसी तरह की खाद नहीं दी जाती। सिर्फ़ बनारस ज़िले में दो आध जगह में सुना गया है कि रोपने की जगह पर जानवर रक्खे जाते हैं, और जिस मट्टी में शोरा भरा रहता है वह मट्टी ज़मीन में डाली जाती है। युक्तप्रदेश में ऐसा ही तरीक़ा देखा जाता है।

मगर खाद के बारे में मैं अपनी राय नीचे लिखती हूँ—

माघ से वैशाख के भीतर दो एक दफ़ा वर्षा हो जाने पर ज़मीन को दो तीन दफ़ा जोतो। ज़मीन की उपज को बढ़ाने के लिए ज़मीन में छन्दाइन नील या अरहर बो दो। असाढ़ के अंदर जो पौधा होगा उसको मई देकर ज़मीन पर लिटा दो। धीरे धीरे वह सड़ जायगा। इससे ज़मीन का बड़ा

भारी फ़ायदा होगा । इसको सब्ज़ी खाद (यानी Green manure) कहते हैं । इसके सिवा तरह तरह की जानदार खादों का इस्तेमाल होता है, जिनमें गोबर भी एक है । सख़्त मटियार ज़मीन में राख भी डाली जाती है। जानदार खाद देने से पौधों के लिए अक्सर सब क़िस्म की ज़रूरी चीज़ें आ जाती हैं, क्योंकि और और चीज़ों के सिवा इसमें शोरा, पोटासियम और फासफारिक एसिड रहता है। पौधे की पुष्टि के लिए ये तीन चीज़ें बहुत ज़रूरी हैं। राख डालने से पोटासियम और फासफारिक एसिड मिल जाता है, मगर जवक्षार नहीं मिलता। साधारणतः बनावटी उपाय से शोरा देने की उतनी ज़रूरत नहीं है, क्योंकि धान वर्षा की फ़सल है। इस समय आसमान के पानी के साथ काफ़ी जवक्षार अर्थात् शोरा ज़मीन में आ जाता है । इस लिए कुआँ या तालाब के पानी से बरसात का पानी पौधों के लिये फ़ायदा पहुँचानेवाला होता है । जानदार खाद और सरसों या रेंडी की खली धान के खेतों के लिए बहुत ही मुफ़ीद है। फ़ी बीघा ५ या ६–७ गाड़ी वह डाली जा सकती है। ज़्यादा खाद डालने से पौधा तेज़ होता है, मगर फसल अच्छी नहीं होती। पहली दफ़ा या दूसरी दफ़ा जोतने के वक़्त तमाम खेत में बराबर बराबर खाद को फैला कर तब खेत को जोतना चाहिए। थोड़ा पहले इस तरह न करने से खाद के गलने में देर लगती है। इसलिए नये रोपे हुए पौधे को पहली हालत में खाद खींचने का मौक़ा नहीं मिलता। अगर खली डाली जाय तो उसको कूट कर पौधा रोपने के बाद खेत में छिड़क देना चाहिए। फ़ी बीघा एक मन से दो मन तक खली डाली जा सकती है।

हड्डी की बुकनी और शोरा मिली हुई खाद धान के लिए बहुत ही मुफ़ीद है । फ़ी बीघा एक मन हड्डी की बुकनी और १० सेर शोरा देना चाहिए। इससे हर एक बीघे में एक मन धान और २४–२५ मन पयाल मिल सकता है । यह खाद इस्तेमाल करने से फ़ी बीघा पाँच रुपया ख़र्च पड़ेगा। मगर ख़र्च निकाल कर बहुत मुनाफ़ा रहेगा।

बीज ज़मीन अर्थात् जिस ज़मीन में बीज बोया जाता (और जिस से उठा कर दूसरी जगह रोपा जाता है) वह अच्छी तरह तर और चूर चूर होनी चाहिए। बीज ज़मीन की मिट्टी जितनी चूर हो उतनी ही ढीली होनी चाहिए। इस लिए बीज बोने के पहले एक दफ़ा मई लगा कर ज़मीन को दाब देना चाहिए। मिट्टी ढीली रहने से पौधों की जड़ें बहुत दूर तक चली जाती हैं, जिससे उखाड़ने के समय बहुत सी जड़ें टूट जाती हैं । बीज बोने के बाद भी एक दफ़ा अच्छी तरह मई लगानी चाहिए। मई लगाने से बीज ज़मीन में ढक जाता और इस कारण पौधा बहुत जल्दी पैदा होता है।

अगर बीज छिड़क कर बोया जाता तो ४० सेर बीज एक एकड़ ज़मीन के लिए काफ़ी होता है। साधारणतः जब वर्षा होने लगे तब बीज को रात भर पानी में भिगोकर दो तीन रोज़ तक भीगी घास से ढक रखना उचित है। इससे अंकुर जल्दी निकल आता है। जब दूसरी जगह रोपा जाता है तब छः इंच की दूरी पर दो से छः तक पौधे एक साथ रोपे जाते हैं।

पानी सींचना—गर्मी की ऋतु में जो धान बोया जाता है उसमें पानी की बहुत ही ज़रूरत होती है। जो धान वर्षा के शुरू में बोया जाता है और अगस्त या सितंबर में काटा जाता है उसके लिए किसी तरह के पानी की ज़रूरत नहीं होती। जो धान रोपा जाता है और नवंबर में काटा जाता है, उसमें वर्षा ख़तम होने पर दो तीन दफ़े पानी देना चाहिए।

निराई—जो धान छिड़क कर बोया जाता है उसकी निराई एक दफ़े होनी चाहिये। जो धान रोपा जाता है उसमें निराई की ज़्यादा ज़रूरत होती है, पर इलाहाबाद में निराई बिलकुल नहीं होती।

गेहूँ और जौ जिस तरह काटे जाते हैं उसी तरह धान भी काटा जाता है। पीट कर धान पौधे

से अलग किया जाता है। किसी किसी जगह बैल से मड़ा कर धान अलग किया जाता है। धान के पौधे को पयाल कहते हैं। बैल वग़ैरह जानवरों को यह पयाल खिलाया जाता है। ढेकली से धान कूट कर चावल तैयार किया जाता है। धान को गर्म पानी में उबाल कर सुखा लेने के बाद चावल तैयार किया जाता है।

बीमारी—गण्डूकी या तंकी नामक मक्खी धान की कट्टर दुश्मन है। अगस्त महीने के अन्त में ये मक्खियाँ धान को बहुत नुक़सान पहुँचाती हैं। इसके बारे में षष्ठ अध्याय देखो।

ख़र्च—एक एकड़ ज़मीन में नीचे लिखे मुताबिक़ ख़र्च पड़ता है—जो धान छिड़क कर बोया जाता है—

जुताई (दो दफ़ा)	...	...	१॥)
बीज (१ मन)	...	...	१॥)
बुआई	...	...	।)
निराई (दो दफ़े)	...	...	३)
रोपाई	...	...	१॥)
मड़ाई	...	...	१॥)
सफ़ा कराई	...	...	।=)
फ़ालतू ख़र्च	...	...	।)
लगान	...	...	५)
		कुल	१४ ।॥=)

जो धान रोपा जाता है—

जुताई (चार दफ़ा)	...	...	३)
बीज (२५ सेर)	...	...	॥=)
बुआई	...	...	―)
खाद (बीज ज़मीन के लिए)	...	...	॥)
रोपाई	...	...	४)
निराई (दो दफ़ा)	...	...	३)
सिंचाई	...	...	७)
कटाई	...	...	१॥)
मड़ाई	...	...	२)
सफ़ाई	...	...	।=)
लगान	...	...	६)
		कुल	२८।=)

आज कल चावल का श्वेतसार (Powder-de-riz नाम से) फ़्रांस से यहाँ आता है। इस देश की स्त्रियाँ उसे क़ीमती चीज़ समझ कर ख़रीदती हैं। इसलिए यहाँ इसी श्वेतसार के बनाने की रीति बतलाई जाती है।

चावल में श्वेतसार बहुत ज़्यादह है। इसमें फ़ी सद्दी ७५—८५ हिस्सा श्वेतसार (Starch) रहता है। और किसी उद्भिद पदार्थ में यह इतना अधिक नहीं पाया जाता। यदि चावल का श्वेतसार बनाना हो तो चावल को चूर्ण करने के पहले किसी खारे पानी में भिगो देना चाहिए। कास्टिक सोडा के साथ पानी मिलाने से खारा पानी तैयार हो जाता है। ३५० हिस्से पानी में एक हिस्सा कास्टिक सोडा मिलाना चाहिए। इस रीति से बनाये गये पानी के ५०० हिस्सों में १०० हिस्से चावल को २४ घंटे तक भीगने देना चाहिए। खारा पानी रखने के लिए ताँबा या टीन का कलई किया हुआ बर्तन अथवा लोहे के एनामेल से बना हुआ बर्तन अच्छा है। बर्तन की तली में एक पेंच (tap) होना चाहिए। पानी की कल में जैसा पेंच होता है; यह पेंच भी वैसाही होना चाहिए।। पेंच के अन्दर पीतल की पतली जाली ज़रूर हो। क्योंकि जाली न होने से पानी निकलते समय चावलों के निकल जाने का डर है। इस लिए जाली का रहना ज़रूरी है। बर्तन की तली के टैप को बन्द कर खारा पानी तैयार करना होगा। इसी में २४ घंटे तक चावलों को भीगने देना चाहिए। फिर टैप खोल कर बर्तन से सब पानी बाहिर निकाल देना चाहिए। खारा पानी निकल जाने पर, उसमें चावलों से दूना पानी डाल कर, उन्हें अच्छी तरह हिलाते रहना चाहिए। इससे चावल साफ़ हो जाँयगे। फिर टैप के ज़रिये पानी निकाल कर चावलों को दूसरे बर्तन में रख देना चाहिए। अब चक्की या रोलर मिल से इन साफ़ किये हुए चावलों को पीसना होगा। इस चूर्ण को लेकर छोटे छेदवाली चलनी से छान डाले। जो चूर्ण चलनी में रह जाय, उसे दुबारा

पीस डाले। इस प्रकार दो तीन दफ़ा या जब तक वह अच्छी तरह पिस न जावे तब तक पीस कर चलनी से चालते रहना चाहिए।

चावल का चूर्ण तैयार होने पर एक बर्तन में रखकर उसमें दशगुना कास्टिक सोडा का पानी छोड़ देना चाहिए। अब फिर पहले की तरह २४ घंटे तक कास्टिक सोडा में इन्हें भिगोना चाहिए। बीच बीच में इसे हिलाते रहना चाहिए। फिर निथरे हुए चूर्ण को जमाने के लिए ७० घंटे तक उसे बर्तन में रख छोड़ना चाहिए। इस समय बर्तन का पानी बिलकुल स्थिर रहने दिया जाय—हिलने डुलने न पावे। अब चूर्ण बर्तन की तली में जम जायगा। चावल और बर्तन के साथ जो खनिज पदार्थ था, वह सबसे नीचे रह जायगा। उसके ऊपर चावलों का मोटा कन या धान की भूसी (अगर रह गई हो तो) जमा होगी। सबके ऊपर साफ़ सफ़ेद पालो (Starch) रह जायगा। पालो के ऊपर गँदला पानी रहेगा। इस पानी में चावल का दूध (Gluten)। द्रव अवस्था में रहने के कारण इसका रङ्ग पीलासा होता है। जमे हुए पदार्थों के पानी का ऊपरी हिस्सा साइफ़ोन नल से निकाल देने से चावल का श्वेतसार और उसके नीचे चावलों का कण अथवा भूसी रह जायगी। इन मिले हुए पदार्थों से अनावश्यक चीज़ों को निकाल डालने पर साफ़ पालो मिल जायगा।

पहिली दफ़ा बर्तन का पीलासा पानी साइफ़ोन नल से निकाल देने पर फिर उसमें दूना पानी डाल कर नली की तमाम चीज़ों को हिला देना होगा। फिर एक घंटे तक पानी को स्थिर रहने देना चाहिए। इसके बाद बर्तन के ऊपर दूध के ऐसे सफ़ेद पानी को रेशमी कपड़े से बनी हुई चलनी में चालना होगा। फिर जो चीज़ बर्तन में रह जाय, उसे पानी मिलाकर बार बार छानते जाना चाहिए। इस प्रकार बार बार छानने से प्रायः सभी पालो नीचे गिर जायगा और पालो के अलावा दूसरी वस्तु चलनी में रह जायगी। चलनी के भीतर से पानी मिला हुआ जो पालो पात्र में गिर गया है, वह ७० घंटे के भीतर ही पानी से अलग होकर बर्तन की तली में जम जाता है। इस बर्तन का पानी स्थिर होने पर धीरे धीरे उसे फेंक देने पर बर्तन की तली में साफ गीला पालो मिलेगा। आवश्यकतानुसार एक या अनेक बार इस पालो में पानी मिलाकर हिलाने से और पानी स्थिर होने पर फेंक देने से पालो धुल सकेगा। पानी मैला रहने से बार बार धोने की ज़रूरत होती है।

चावल का साफ़ भीगा पालो सुखा लेने पर बिक्री के योग्य हो जाता है। पालो को बिलकुल न सुखाकर थोड़ा थोड़ा गीला रहते समय सांचे में ढालने से कई क़िस्म की चकती बन जाती है। यह चकतियों या सूखी पालो की बुकनी के रूप से बाजार में बिक सकेगा। चावल का पालो कपड़े की इस्त्री के लिए अरारोट के बदले में इस्तेमाल किया जा सकता है। इस पालो से इस्त्री ख़ूब सख़्त और अच्छी होती है। चावल के पालो के साथ थोड़ासा नील मिलाकर इस्त्री करनी चाहिए।

आजकल कई प्रकार के पाउडर मुँह में लगाने के लिए स्त्रियाँ चाहती हैं। इस पाउडर के तैयार करने में भी चावल के श्वेतसार की ज़रूरत है। चावल का श्वेतसार खाया भी जा सकता है। इसके सिवा और नाना प्रकार के शिल्पकार्य में चावल के श्वेतसार की ज़रूरत होती है। इसलिए इसके बनाने से द्रव्य प्राप्ति का एक नया द्वार मिल जायगा।

मिजहिरी, कुटकी।

युक्त प्रदेश के दक्षिण में इसकी खेती होती है। ललितपुर में इसकी खेती देख पड़ती है। मगर ललितपुर मध्यभारत में गिना जा सकता है। यद्यपि ललितपुर बुन्देलखण्ड में शामिल है, तो भी उसे मध्यभारत की सरहद कहना चाहिये।

जून के महीने में यह बोया जाता है और अक्तूबर के महीने में काटा जाता है। इसके लिये अच्छी

ज़मीन की ज़रूरत नहीं होती। एक एकड़ ज़मीन में दो मन मिज़हिरी पैदा होती है।

—:०:—

अखंडत्व।

स वर्ष ब्रिटिश असोसिएशन के वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर इँगलण्ड के प्रसिद्ध विज्ञान-वेत्ता सर आलिवर लाज (Sir Oliver Lodge) ने जो व्याख्यान दिया उसका अनुवाद नीचे दिया जाता है।

लोग पूछेँगे कि आज कल की स्थिति क्या है? भिन्न भिन्न लोग भिन्न भिन्न प्रकार की राय देंगे पर मेरा उत्तर है कि 'उन्नति की क्षिप्र गति और संशयवाद'। १९ वीं शताब्दी में उन्नति की—विशेष कर भौतिक विज्ञान की उन्नति की—गति इतनी क्षिप्र नहीं थी। नीवेँ दे दी गई थी और दीवारें तैयार होगई थीं पर नई नई ज़मीनों पर नई नई इमारतें खड़ी होने की आशा नहीं दिखाई देती थी। जब कि १८८८ में ईथर की धाराओं की भविष्यद्वाणी की की गई, १८९५ में पारदर्शक किरणें (X rays) का पता लगा, १८९९ में स्वप्रेरित प्रकाशविसर्जिनी क्रिया का निरूपण हुआ और विद्युदण्ड (Electron) की एकान्तता प्रतिपादित हुई तभी से विज्ञान के शीघ्र आगे बढ़ने की आशा दिखाई देने लगी। इस शताब्दी के आरम्भ से तो प्रत्यक्ष-सिद्ध, अनुमान-सिद्ध, और विवेचना-सिद्ध नई नई बातों की वर्षा ही होने लगी। इसीसे मैं ने उन्नति की क्षिप्र गति कही। इस उन्नति के विषय में तो मैं विशेष कुछ नहीं कहूँगा क्योंकि इसमें कुछ न कुछ सन्देह बना ही रहता है कि कौन सी गति यथार्थ उन्नति की ओर है, पर संशयवाद के विषय में मैं कुछ कहूँगा।

मैं यह चटपट बतला देना चाहता हूँ कि संशयवाद से मेरा अभिप्राय उस परलोक आदि सम्बन्धी पुराने झगड़े से नहीं है, क्योंकि यह झगड़ा अब मुल्तवी है। जिस क़िले में परलोकवादी ने शरण ली है वह आक्रमण के लिए लोगों को आकर्षित नहीं करता। जिस कोने को दबा कर वह बैठा है उस पर उसका हक़ है। अब जो झगड़ा चल रहा है वह वैज्ञानिक दलों ही के बीच है जिसमें दार्शनिकों का भी योग है। परलोकवादी तो अब एक कोने में बैठा दूर से आशा लगाए देख रहा है कि इस लड़ाई से कभी न कभी उसके काम की बात निकल आवेगी। वह बैठे बैठे सोचता है कि बहुत सी बातें जिन्हें लोगों ने अधूरे ही प्रमाणों पर उतावली करके झूठा ठहराया वे किसी न किसी रूप में आगे चल कर ठीक प्रमाणित होंगी। इस प्रकार धर्मोपदेशकों का पुराना द्वेष तो अब शान्त है।

आज कल के प्रधान विवाद।

यहाँ उन सब विवादों का वर्णन करना जो आज कल विद्या के भिन्न भिन्न विभागों में चल रहे हैं असम्भव है। मैं यहाँ थोड़े में प्रधान प्रधान विवादों का उल्लेख मात्र किए देता हूँ। भौतिक विद्या में शक्ति (Vitality) पर विवाद चल रहा है। रसायन में अणुओं की बनावट का झगड़ा है। प्राणिविज्ञान (Biology) में पैत्रिक परम्परा के नियमों की छानबीन है। इन मुख्य विवादों के अतिरिक्त और विषयों में भी परस्पर विचार लड़ रहे हैं। शिक्षा-पद्धति में बच्चों को अधिक स्वतंत्रता देने के लाभ बतलाए जा रहे हैं। राजनीति, अर्थनीति और समाजनीति में तो दुनिया की कौन ऐसी बात है जिस पर झगड़ा न हो—केवल 'धन और धरती' ही पर नहीं, अदन के पुराने बाग़ से लेकर स्त्री और पुरुष के परस्पर सम्बन्ध तक पर विवाद छिड़ा है। इसी प्रकार गणित और विज्ञान की शाखाओं में आज कल का संशयवाद अखंडत्व (Continuity) के सम्बन्ध में है। इस शब्द का अभिप्राय मैं आगे चल कर खोलूँगा।

इन सब आंशिक विवादों से बढ़ कर गूढ़ और सिद्धांत-मूलक सब प्रकार के विज्ञान के आधारों की गहरी परीक्षा है जो आज कल हो रही है। एक प्रकार का दार्शनिक संशयवाद भी बढ़ती पर है

जिससे बुद्धि के शुद्ध निरूपण-क्रम पर भी अविश्वास किया जा रहा है और विज्ञान की पहुँच भी परिमित बतलाई जा रही है।

न्यूटन की पदार्थ-व्यवस्था।

केवल दार्शनिक ही नहीं वैज्ञानिक लोग भी पुराने सिद्धान्तों के खंडन में लगे हैं। वैज्ञानिक और गणितज्ञ इस बात का विचार करने लगे हैं कि क्या न्यूटन के चिरपरिचित और अच्छी तरह निर्धारित पदार्थ-नियमों के स्थान पर अधिक नवीन सिद्धान्तों का स्थापन नहीं हो सकता—ऐसे सिद्धान्त जिनके पास तक न्यूटन के नियम केवल कुछ कुछ पहुँचते हैं। सच तो यों है कि एक पूरा अन्यूटनिक सिद्धान्त ही निकाला गया है जिसके आधार हाल में जाने हुए वे परिवर्त्तन हैं जो प्रकाश के तुल्य वेग से गमन करते हुए पदार्थों में होते हैं। वास्तव में यह पाया गया है कि मात्रा और आकृति वेग की क्रियाएँ वा गुण हैं। जैसे जैसे वेग बढ़ता है वैसे ही वैसे मात्रा बढ़ती है और आकृति में मोड़माड़ होता है पर साधारण अवस्था में हद से ज़्यादा सूक्ष्म रूप से। मैं यहाँ तक इस बात को मानता हूँ पर मैं इसे इतनी हलचल डालनेवाली नहीं समझता जिससे न्यूटन की सारी पदार्थ-व्यवस्था ही उलट पुलट हो जाय। मात्रा का परिवर्त्तन तो जानी हुई बात है पर यह कहना बड़ी भारी भूल है कि मात्रा सदा समान नहीं रहती। इससे न्यूटन का 'दूसरा नियम' (Second law) ही खंडित हो जाता है। पृथ्वी, जलबिन्दु आदि परिवर्त्तनशील मात्रा के उदाहरण हैं। परिवर्त्तनशील मात्रा तो बहुत देखी जाती है क्योंकि रगड़ से भी गतिवान् पदार्थ कुछ घिसते हैं यद्यपि अत्यन्त सूक्ष्म रूप से।

मात्रा सदा समान रहती है यह एक स्थूल बात है। मात्रा क्षमता (Energy) और वेग के हिसाब से होती है यह एक सूक्ष्म निरूपण है और बिलकुल ठीक हो सकता है। यह विद्युदण्ड (Electron) के विषय में भी ठीक घट सकता है जिसकी गति प्रकाश के तुल्य होती है। न्यूटन के ही दूसरे नियम के सहारे परीक्षा करके यह जाना गया कि वेग के साथ साथ मात्रा का परिवर्त्तन होता है। मेरा कहना यह है कि हम न्यूटन के नियमों का तिरस्कार न करें बल्कि उनके सहारे नई नई बातों का पता लगाते हुए परिशिष्ट रूप से उनकी कसर पूरी करें।

जितनी ही नई बातों का पता लगेगा उतनीही उलझन बढ़ेगी।

एक बात जो बहुत ध्यान देने की है वह यह है कि हमारे ज्ञान के अधिक सूक्ष्म और यथार्थ होने के कारण ही वह संशयवाद उत्पन्न हुआ है जिसका मैं ने ऊपर उल्लेख किया। वे सुगम नियम जिनका हम व्यवहार करते आते थे इस कारण सुगम थे और उनका पता लगना इस कारण सहज था कि स्थिति की पूर्ण जटिलता अन्वीक्षण साधनों की अपूर्णता के कारण हमसे छिपी थी। केपलर के नियम बिलकुल सटीक नहीं हैं। यदि उसके सामने वे सब बातें होतीं जो आज हमारे सामने हैं तो वह उन नियमों का पता शायद ही पा सकता। जैसा कि केपलर ने बतलाया था ग्रह वास्तव में दीर्घवृत्त (Ellipse) में नहीं भ्रमण करते बल्कि एक प्रकार के अतिचक्रालद (Hypocycloid) में भ्रमण करते हैं, सो भी ठीक ठीक नहीं।

भौतिक विज्ञान के अधिकांश विभागों में सुगमता के स्थान पर जटिलता आती जाती है। अब मेरा कहना यह है कि वे सीधे और सुगम नियम जहाँ तक उनकी पहुँच है वहाँ तक ठीक हैं। उनमें जो कसर है उसका पता आगे के यथार्थ आविष्कार से लगता चलेगा। जिन कारणों तक पुराने लोग नहीं पहुँच पाते थे आज उन तक हमारी पहुँच है। इससे सच पूछिए तो पुराने नियमों में कोई व्याघात नहीं होता बल्कि और अधिक कारणों का पता चल जाने से परिशिष्ट रूप से उनका संशोधन होता है। अस्तु, जो कुछ हो रहा है वह उन्नति ही के मार्ग पर।

अखंडत्व और खंडत्व का विवाद ।

आज कल भौतिक विज्ञान में जो मुख्य विवाद चल रहा है उसके झुकाव का सारांश अखंडत्व और खंडत्व के विषय में है। ऊपर से देखने में सृष्टि के बीच हम पहले खंडत्व पाते हैं अर्थात् हम ऐसे पदार्थ देखते हैं जिन्हें अलग अलग गिन सकते हैं। फिर हम वायु तथा और और अन्तरवर्त्तियों का अनुभव करते हैं और अखंडत्व और प्रवाहित द्रव्य का समर्थन करते हैं। इसके अनन्तर हम अणुओं का पता लगाते हैं और फिर खंडत्व हमारे सामने आता है। तब हम ईथर का आविष्कार करते हैं। और फिर अखंडत्व पर विश्वास करते हैं। पर इस का अन्त यहीं नहीं होने का। अन्तिम परिणाम क्या होगा, या अन्तिम परिणाम कुछ होगा भी, यह बतलाना कठिन है।

आज कल की प्रवृत्ति तो प्रत्येक पदार्थ को सखंड वा अणुमय बतलाने की है। द्रव्य की व्यष्टि (unit) अणु है जैसे कि समाज की व्यष्टि प्राणी है। जैसे समाज की व्यष्टियों को एक एक गिन कर हम कहते हैं कि इतने प्राणी हैं वैसे ही द्रव्य के अणु भी गिने जा सकते हैं।

यह ठीक है कि अखंडत्व का भ्रम भी होता है जैसे कि जल में। वह देखने में एक अखंड प्रवाह जान पड़ता है पर है अणुमय। किन्तु उसके अंतरों में ईथर की स्थापना करके हम उसे फिर अखंड निश्चित करते हैं। हां! आसबर्न रेनल्ड्स (Osborne Reynolds) ने अलबत नदी की रेत के दृष्टान्त पर सखंड और कणमय (granular) ईथर की उद्भावना की है। वे कहते हैं कि बालुकाकणों, सिर के बालों आदि का गिनना इसलिए नहीं कठिन है कि गिनने को कोई वस्तु नहीं है बल्कि इस लिए कि गिनने के लिए वस्तु अत्यंत असंख्य हैं। एक बूँद के अणुओं को लीजिए; उनकी संख्या शायद अटलांटिक महासागर के बूँदों से भी अधिक होगी!

असम्भावित स्थानों में संख्या का अधिकार ।

विद्युत् वा विद्युत्प्रवाह भी—सुन कर आश्चर्य होगा—अणुमय प्रमाणित हुआ है। फैराडे और मैक्स-वेल (Faraday and Maxwell) ने विद्युत्प्रवाह की व्यष्टि का अनुमान किया और जांस्टन स्टोने (Johnstone Stoney) ने उसका नामकरण (Election वा विद्युदणु) किया। क्रुक्स (Crooks) ने वायुशून्य कोश (vacuum) में विद्युदणु के कुछ गोचर प्रभावों की परीक्षा की और सन् १८९९ में जे० जे० टाम्सन (J. J. Thomson) ने इसी ब्रिटिश असोसिएशन के सामने उसकी माप तौल बतलाई।

चुंबक-शक्ति तक के अणुमय होने का सन्देह किया गया है और उसकी व्यष्टि वा अणु का नाम पहले ही से चुंबकाणु (magneton) रख दिया गया है। इतना सब होने पर भी मैं अपने पुराने विचार से नहीं डिगा हूँ। इन सब को मैं असम्भावित स्थानों में संख्या का अधिकार कहता हूँ। प्राणिविज्ञान के विषय में भी कह सकते हैं कि वह अणुवादी हो चला है। उसमें प्राणकोश (Cells) आदि के रूप में प्राकृतिक व्यष्टियाँ बहुत दिनों से थीं और प्राणकोश के परदों (cell-walls) आदि के रूप में उसमें खंडत्व का अधिकार था ही। अब उसके पैत्रिक परम्परा के नियमों (Laws of heredity) का अध्ययन कर मेंडल (Mendel) ने बतलाया है कि गर्भोत्पादक प्राणकोशों (Reproductive cells) में भी संख्या और खंडत्व प्रत्यक्ष है और सन्तति-भेद भी गिने और पहले से बतलाए जा सकते हैं। जहां डारविन के अनुसार अखंड भेदपरम्परा द्वारा फेर-फार माना जाता था वहां उसके स्थान पर, वा कम से कम उसके साथ साथ अब रूपान्तर द्वारा सहसा विशिष्ट, असम्बद्ध और परंपराखंडित परिवर्त्तन माना जाने लगा है। जहां यह कहा जाता था कि प्रकृति अन्तर छोड़कर आगे नहीं कूदती वहां अब

यह कहा जाने लगा है कि उसके सिवा वह ग्रौर करती क्या है? उसकी वह शृंखलाबद्ध गति ग्रब देखने में खंडित जान पड़ती है।

पर इसमें सन्देह नहीं कि ग्रखंडत्व ही विकाश सिद्धान्त का मूल है जैसा कि प्रायः सारे प्राणि-तत्त्वविदों का कथन है। योनियों ग्रौर जातियों के बीच कोई कृत्रिम सीमा निर्धारित नहीं—क्षुद्र कीट से लेकर मनुष्य तक एक ग्रखंड पैत्रिक शृंखला दिखाई देती है।

खंडत्व ग्रौर शुद्ध गणित।

शुद्ध गणित में भी खंडत्व ग्रपना रूप दिखाने लगा है, यहाँ तक नहीं, इससे भी बढ़ कर दुरूह ग्रौर ग्रसम्भावित विषयों का प्रतिपादन किया जा रहा है ग्रौर द्रव्य की क्षमता (energy) तक ग्रणुमय बतलाई जाने लगी है। प्रोफ़ेसर प्लांक (Professor Planck) का क्षमताणु (quantum) वाद ग्रत्यंत चित्ताकर्षक, ग्रौर कुछ लोगों की समझ में ग्रत्यन्त प्रबल है।

ज्योतिप्रवाह के भी सखंड ग्रौर ग्रणुमय सिद्ध होने के लक्षण दिखाई देने लगे हैं। ज्योतिप्रवाह (radiation) के कणमय होने की चर्चा ग्रब उतनी धीमी नहीं है जितनी कि कुछ पहले पड़ गई थी। कोई कोई ज्योतिप्रवाह तो ग्रवश्य कणमय होते हैं। पर ईथर-सम्बन्धी ज्योतिप्रवाह में भी ऐसे लक्षण दिखाई दे जाते हैं जिनसे भ्रम होता है कि वह धब्बेदार है, स्थान स्थान पर बिन्दुग्रों के रूप में है ग्रौर उसकी ग्रग्रधारा धब्बों ग्रौर धज्जियों की बनी है। जे० जे० टाम्सन ने तो कह ही डाला है कि "ग्रग्रधारा एक सम-प्रकाशित सतह की ग्रपेक्षा काली सतह पर चमकीले धब्बों के ग्रधिक सदृश है। इससे ईथर के रेशेदार होने का ग्राभास मिलता है, इत्यादि।"

ज्योतिप्रवाह का महत्त्व।

इस बात में यथार्थता चाहे जितनी हो पर ज्योतिप्रवाह-सम्बन्धो जो विवाद है वह है बड़े काम का। इस विषय को इतना महत्त्व क्यों दिया गया है? इस लिए कि यह ईथर ग्रौर द्रव्य के बीच की सब से ग्रधिक ज्ञात ग्रौर परीक्षित शृंखला है। हम लोगों का जाना हुग्रा यही एक ऐसा गुण है जो ग्रकेले ईथर के निर्लिप्त विस्तार पर प्रभाव डाल सकता है। विद्युत् ग्रौर चुंबकशक्ति का लगाव उसके उस विशेष ग्रौर एकान्त रूपान्तर से है जिसे विद्युदणु कहते हैं। बाक़ी ग्रौर बहुत से व्यापारों का लगाव सीधे द्रव्य से है। ज्योतिप्रवाह यद्यपि वेग-प्रेरित विद्युदणु ही से उत्तेजित होता है पर ग्रागे चल कर वह ग्राकाशीयतत्त्व ईथर ही में विचरण करता है ग्रौर एक विशिष्ट वस्तु की तरह सम तथा नियमित गति से गमन करता है। यदि ईथर द्रव्य से लिप्त ग्रौर लदा न हो, सर्वथा मुक्त हो, तो भी ज्योति की गति चली चलेगी, उसे किसी ग्रौर बात की ग्रपेक्षा न होगी। इससे ज्योतिप्रवाह के द्वारा हम बहुत सी बातें जान सकते हैं। ग्रब देखना है कि इस ग्रणुवाद, कणवाद ग्रौर खंडवाद को लोग कहाँ तक लेजाते हैं। कुछ लोगों का ख़्याल है कि यह बहुत दूर तक जा सकता है। पर जो बात है वह मैं कहे देता हूँ कि मैं ग्रन्ततः ग्रखंडत्व का समर्थक ग्रौर ग्राकाशरूप ईथर का पक्का विश्वासी हूँ।

कणों के ग्रध्ययन की उन्नति।

इस खंडवाद की प्रवृत्ति को बड़ा भारी सहारा उस विलक्षण उन्नति से मिला है जो कणों के ग्रन्वीक्षण ग्रौर उनके क्रम-विभाग के ग्रध्ययन में हुई है। गैसों के जो नियम हैं वे ग्रधर में उड़ती महीन बुकनियों के सम्बन्ध में भी ठीक घटते पाए गए हैं। सब से बढ़ कर बात तो यह हुई कि पारदर्शक किरणों (X rays) के सहारे बिल्लौर ग्रादि के कणों के क्रम देखे गए।

पुरानी बात का पक्ष।

मैं ने जिन विवादयुक्त बातों की सम्भावनाग्रों का ऊपर उल्लेख किया उनके विषय में मैं चाहता हूँ कि लोग पुराने पक्ष पर जमे रहें। मैं उन परीक्षा-

सिद्ध परिणामों को स्वीकार करता हूँ जिन पर बहुत से सिद्धान्त—जैसे सापेक्षिकता का—निर्भर हैं। पर मैं उन्हें उतना हलचल डालनेवाले नहीं समझता जितना कि उनके प्रवर्त्तक समझते हैं। मेरी समझ में ऐसा ढंग निकल सकता है जिससे पुरानी बातों को रखते हुए भी हम नई बातों को ग्रहण कर सकते हैं। लक्ष्यों को हटाने में धैर्य्य से काम लेना चाहिए। इन लक्ष्यों में सब से प्रधान अखंडत्व है। मैं शून्य आकाश में किसी सूक्ष्म से सूक्ष्म भौतिक शक्ति की क्रिया का अनुमान नहीं कर सकता। उसके लिए एक अखंड मध्यस्थ अवश्य चाहिए। मैं दिक् (space) और काल में खंडत्व नहीं मान सकता और न कोई ऐसी परीक्षा ही जानता हूँ जिससे इस प्रकार का सिद्धान्त निकल सके। हम दिक् (आकाश) और काल की परीक्षा का कोई ढंग नहीं जानते। हम उनमें किसी प्रकार का परिवर्त्तन उपस्थित नहीं कर सकते। हम लोग केवल द्रव्य खंड की परीक्षा कर सकते हैं।

ईथर का वास्तविक अस्तित्व।

बहुत अच्छा, तो अब ईथर के विषय में क्या कहा जासकता है? वह एक काल्पनिक निरूपण मात्र है अथवा कोई भौतिक अस्तित्व है जिसकी हम कोई परीक्षा कर सकते हैं? यह तो मान ही लेना पड़ेगा कि ईथर की किसी प्रकार की परीक्षा अत्यन्त दुःसाध्य है। न वह गोचर है और न किसी प्रकार हमारी पकड़ में आ सकता है। उसके विषय में हम केवल इतना ही जानते हैं कि किस वेग से उसके द्वारा शक्तिप्रवाह गमन करते हैं। यही एक बात स्पष्ट और निर्दिष्ट है जिससे हम ईथर को एक भौतिक मध्यस्थ मानते हैं। यद्यपि वह ग्राह्य और गोचर नहीं है पर उसका भौतिक अस्तित्व अवश्य है। वह हमारे परीक्षालयों की पकड़ में नहीं आ सकता। यदि हम उसके बीच से कोई द्रव्य तेज़ी से ले जाँय और इस युक्ति से उसकी धर पकड़ करना चाहें तो भी नहीं कर सकते क्योंकि कोई पदार्थ-घटित सम्बन्ध नहीं मिलता। यदि प्रकाश को लेकर परीक्षा करते हैं तो भी सफलता नहीं होती। जब तक कि प्रकाश की गति हमारे सापेक्ष है तभी तक हम उसका अनुभव कर सकते हैं। पर जब एक द्रव्य की गति दूसरे के सापेक्ष नहीं है तब उसकी गति आदि का पता कुछ भी नहीं चलता। जैसे यदि दो मनुष्य साथ साथ समान गति से गमन करते हैं तो एक को दूसरे की गति नहीं मालूम हो सकती। इसी से यह विचार होता है कि किसी गति को ईथर के सापेक्ष बतलाना बात ही बात है। अब तक केवल द्रव्यखंडों की परस्पर सापेक्ष गति का पता चल सका है। यही बात 'सापेक्ष सिद्धान्त' की जड़ है। कहने में तो यह एक साधारण सी बात जान पड़ती है पर यह सापेक्ष सिद्धान्त अत्यन्त गहन और पेचीदा है। इसका प्रतिपादन प्रोफ़ेसर ईंस्टिन (Professor Einstein) ने बड़ी विलक्षण योग्यता के साथ किया है। बात यह है कि अब तक कोई ऐसी गति नहीं देखी गई जो केवल ईथर ही के सापेक्ष हो। भेद समझने के लिए गति का हिसाब लगाने में कोई न कोई ऐसी विलक्षण भेद-पूर्ति (compensation) बीच में अवश्य हो जाती है जिससे एकान्त गति का निर्धारण हो ही नहीं सकता। जब एक द्रव्य दूसरे द्रव्य के पास से होकर जाता है तभी कोई बात देखी जा सकती है। उस अवस्था में भी गतिवान् द्रव्य-खंड के बाहर ईथर में कोई गति वा फेरफार नहीं देखा जा सकता।

ईथर की गति की माप।

ईथर द्वारा गति की परीक्षा के लिए हमें ईथरी युक्ति ही को काम में लाना चाहिए। हम ज्योति-प्रवाह से काम लें और पहले प्रकाश के वेग को उस गति के अनुकूल और फिर प्रतिकूल मिलावें। पर मिलान हम करें तो कैसे करें? यदि प्रकाश का प्रस्थान किसी दूर पर रक्खी हुई घड़ी के पास से हो और हम प्रस्थान का समय उस घड़ी में दूरबीन द्वारा देखें तो इस युक्ति से भी एक प्रकार की भेद-पूर्ति होती है क्योंकि दूरबीन से भी हम प्रकाश की किरणों ही के सहारे देखते हैं। यदि अपनी बगल

से हम प्रकाश छोड़ें और वह सामने दूर रक्खे हुए शीशे पर पड़ कर फिर हमारे पास प्रत्यावर्तित हो कर आवे तो भी यही बात होगी। यदि हम ऐसा प्रबन्ध करें कि दूर से छोड़े हुए प्रकाश के प्रस्थान का समय हमें तार द्वारा सूचित किया जाय तो उस तार की सूचना भी ईथर ही द्वारा हमारे पास आवेगी और भेद वा कसर की पूर्त्ति होगी, भेद ठीक न जान पड़ेगा। बिजली, चुंबकशक्ति, प्रकाश आदि सब ईथर ही के प्रभाव हैं। घनत्वयोजना (cohesion) द्वारा भी हम यह परीक्षा नहीं कर सकते क्योंकि यह बात निश्चित है कि ईथर ही विश्व में अणुओं का संयोजक है। तब कोई ऐसी क्रिया काम में लाई जाय जो ईथर पर अवलंबित न हो। पर ऐसी क्रिया हम लावेंगे कहाँ से ?

बात यह है कि हम लोगों का यह युग अत्यन्त सूक्ष्म कल्पनाओं का है। बीसवीं शताब्दी का बड़ा भारी आविष्कार है द्रव्य का वैद्युतिक सिद्धान्त। यह हम लोगों के समय का बड़ा भारी आविष्कार है। इस सिद्धान्त का प्रादुर्भाव हमारे ही समय में हुआ है इससे हम इसके विषय में पूरी विवेचना नहीं कर सकते। इसे अभी पूर्ण रूप से जड़ पकड़ना है, उसके पूरे ब्योरों का अभी विकाश होना है। हाँ इतना इसके विषय में पहले से कह सकते हैं कि यह आगे चल कर किसी न किसी रूप में ठीक प्रमाणित होगा।

आगे चल कर इस सिद्धान्त से विलक्षण परिणाम निकलेंगे। इसके कारण बहुत कुछ उथल पुथल और संशय तो अभी से आरम्भ हो गया है। क्योंकि यदि यह सत्य है तो प्रत्येक भौतिक पारस्परिक क्रिया वैद्युतिक वा ईथरीय होगी। इसी से अड़चन पड़ती है। प्रत्येक प्रकार की शक्ति का सञ्चार ईथर ही द्वारा होता है। इससे जब तक हमारे सब साधन-यंत्र एक ही वेग से गमन करते हैं तब तक गति के पता लगने की कोई सम्भावना नहीं। इसी बात पर सापेक्ष सिद्धान्त का ज़ोर है। परिवर्तन शून्य तो नहीं होते पर वे एक दूसरे को ऐसा काट देते हैं कि किसी का पता नहीं लग सकता।

आकाश के ईथर के अन्वीक्षण की कठिनता।

यह ईथर का सर्वव्यापकत्व, एकरूपत्व और सर्वसाधकत्व है जिससे उसका निरीक्षण इतना कठिन है। किसी वस्तु के अन्वीक्षण के लिए विभिन्नताओं का होना आवश्यक है। यदि कुछ दूर पर ईथर के बीच सब क्रियाओं का सञ्चालन समान गति से हो रहा है तो उनमें से एक की गति का भी पता नहीं लग सकता। कोई ऐसी वस्तु ढूँढ़ी जाय जिसका प्रसार ईथर द्वारा न होता हो तो काम चले। पर प्रत्येक भौतिक व्यापार का सञ्चार ईथर ही द्वारा होता है, शायद आकर्षण (gravitation) को छोड़ कर। उसके सहारे शायद कभी कुछ पता चले पर अभी तक उसकी सञ्चारण गति आदि की परीक्षा कुछ भी नहीं हो सकी है। उसकी माप की कोई युक्ति अभी तक हाथ नहीं आई है। शायद द्रव्य की सृष्टि और उसके विनाश को छोड़ और किसी प्रकार यह परीक्षा हो भी न सके। द्रव्य से तात्पर्य आकर्षण व्यष्टि (gravitational unit) से है चाहे वह अणु, विद्युदणु जो कुछ हो। सम्भवतः गुरुत्व (weight) की व्यष्टि भी विद्युदणु है, जैसे कि मात्रा की। अन्यूटनिक पदार्थ-व्यवस्था, जिसमें मात्रा और आकृति वेग की क्रियाएँ निश्चित हुई हैं, द्रव्य के वैद्युतिक सिद्धान्त ही का फल है। द्रव्य का वैद्युतिक सिद्धान्त बड़े मार्के का है और उससे बड़े बड़े परिणाम निकलेंगे। इसकी सहायता से हम उन परीक्षाओं को करते हैं जिनसे ईथर और द्रव्य के सम्बन्ध का कुछ आभास मिलता है। इसके स्थान पर जो सापेक्षवाद अग्रसर होना चाहता है वह निराकरण का सिद्धान्त है, निषेध करनेवाला निरूपण है। वह कहता है कि कुछ बातों का पता कभी लग ही नहीं सकता। ईथर और द्रव्य का कोई सम्बन्ध ही नहीं और न ईथर कोई वस्तु है। पर यदि हम उन वास्तविक परिवर्त्तनों को स्वीकार कर लेते हैं जो तीव्र वेग के कारण होते हैं तो हमारे आविष्कार के लिए सारा मैदान पड़ा है। इससे किसी दिन यह भी सम्भव है कि हम विद्युदणु की आकृति आदि के परिवर्तनों

का भी पता लगा लें, क्योंकि यद्यपि वह अत्यन्त सूक्ष्म है पर उसकी गति प्रकाश की गति के लगभग है। फिर कौन जाने इसी प्रकार आकाश के ईथर के गुणों तक भी हमारी पहुँच हो जाय, यद्यपि ईथर अत्यन्त चक्कर में डालनेवाला है।

भौतिक अखंडत्व की नींव।

ईथर भौतिक विज्ञानवेत्ताओं ही का अधिकृत विषय है। कणों की परीक्षा आदि तो हम रासायनिकों से लेते हैं। भिन्न भिन्न रूपों में द्रव्य की परीक्षा तो सब वैज्ञानिक करते हैं पर आकाश के ईथर का अध्ययन भूतविज्ञान (physics) ही का विषय है। इस परम तत्त्व के महत्त्व का स्वीकार करनेवाला अकेला मैं ही नहीं हूँ। अपनी विलक्षण भ्रान्तिकारिणी और अग्राह्य वृत्ति, अपनी विश्व-व्यापिनी और एकता-विधायिनी नित्यता, अपने अनन्त और अपार विस्तार तथा पूर्ण और नियमित गुण के कारण ईथर अत्यन्त कौतूहलप्रद और भौतिक ब्रह्मांड का सार तत्त्व है। सर जे० जे० टाम्सन ने विनिपेग (Winnipeg) नगर में कहा था—"ईथर दार्शनिकों की निरी कल्पना नहीं है। यह हमारे लिए वैसा ही आवश्यक है जैसी साँस लेने की हवा।.......इस सर्वव्यापक तत्त्व का अनुसन्धान भौतिक विज्ञानवेत्ताओं का बड़ा भारी और परम मनोहर कर्त्तव्य है"। यह द्रव्य तो नहीं है पर भौतिक अवश्य है क्योंकि यह भौतिक ब्रह्मांड के अन्तर्गत है और भौतिक युक्तियों से जाना जा सकता है। पर इस कहने से यह न समझना चाहिए कि मैं इस बात को अस्वीकार करता हूँ कि इसके द्वारा सृष्टि की किसी और कोटि (भौतिक से परे) में मानसिक और आध्यात्मिक व्यापारों का साधन भी होता हो।

आकाशीय ईथर अखंडत्व का बड़ा भारी प्रवर्त्तक है। सम्भव है यह इससे भी महत्तर हो क्योंकि इसके बिना भौतिक ब्रह्मांड की सृष्टि ही नहीं हो सकती। इसमें तो सन्देह नहीं कि अखंडत्व के लिए यह परम आवश्यक है, क्योंकि यही एक ऐसा व्यापक पदार्थ है जो द्रव्य-खंडों को परस्पर बाँधता है। यह एक ऐसा संयोजक और मिलानेवाला मध्यस्थ है जिसके बिना यदि द्रव्य रहता भी तो इधर उधर छितराए खंडों में रहता। यह जगत् और अणुओं के बीच का मध्यस्थ है। इतने पर भी लोगों के लिए इसका अस्तित्व अस्वीकार करना सम्भव है क्योंकि यह हमारी इन्द्रियों को ग्राह्य नहीं है, केवल दृष्टि को इसका अत्यन्त सूक्ष्म परिज्ञान हो सकता है, सो भी इतने घुमाव फिराव के साथ कि साधारण रीति से पता नहीं लग सकता।

भौतिक विज्ञान की परिमित पहुँच।

मेरा यह कहना है कि विज्ञान ठीक ठीक निषेध करने में असमर्थ है चाहे वह ईथर ही का क्यों न हो, और यदि वह ऐसा करता है तो अपने कर्तव्य के विरुद्ध करता है। विज्ञान को निषेध में नहीं फँसना चाहिए, प्रतिपादन ही की ओर ध्यान रखना चाहिए। जो सूक्ष्म सार-कल्पना (abstractions) के आधार पर है उसे अपने अधिकार के बाहर निषेध करने नहीं जाना चाहिए। ऐसा प्रायः होता है कि सार रूप से निरूपित जिन बातों पर विज्ञान की एक शाखा ध्यान नहीं देती उस पर दूसरी ध्यान देती है।

मैं देखता हूँ कि कुछ आलोचकों ने मुझे शक्तिवादी (vitalist) कहा है। एक प्रकार से मैं हूँ भी। पर यदि शक्तिवाद से अभिप्राय है भौतिक और रासायनिक विज्ञान-नियमों के विरुद्ध एक अनिर्दिष्ट और अज्ञात शक्ति का सहारा लेना तो मैं ऐसा शक्तिवादी नहीं हूँ। इन नियमों में परिशिष्ट रूप से घटाव बढ़ाव हो सकता है पर इनका उल्लंघन किसी प्रकार नहीं हो सकता। विज्ञान का काम यही है कि जहाँ तक हो सके सर्वत्र इन नियमों के परिचालन का पता लगावे, और सच्ची प्रज्ञा (instinct) वही है जो विज्ञान की क्रियाओं में आध्यात्मिक और अज्ञात कारणों को लाना न देख सके। विज्ञान में अदृष्टवाद का सहारा लेना अनुचित है क्योंकि उससे परीक्षा और अनुसन्धान में रुकावट पड़ती है। यदि किसी घटना के विषय में केवल यही कह

दिया जाय कि 'यह ईश्वर की लीला है' और कुछ न कहा जाय तो वह घटना बिना समझी बूझी ही रह जाती है। सब के अन्त में जाकर यह कथन सत्य हो सकता है और विश्वमात्र पर घट सकता है। पर धीरे धीरे करके परम्परा-क्रम से पहुँचते हुए बहुत से कारण बीच में होते हैं जिनका पता धैर्य्य के साथ लगाना चाहिए। ऐसा करने से हम बिजली, भूडोल आदि के प्राकृतिक कारणों तक पहुँचते हैं। मूल वा आदि कारण की व्यवस्था तक विज्ञान नहीं पहुँचता, वह केवल बीच के क्रमशः पहुँचते हुए कारणों की छान बीन करता है। इन्हीं के लिए वह है और इन्हीं को ढूँढ़ना इसका काम है। पेड़ों का रस मूल से ऊपर कैसे चढ़ता है? इसके उत्तर में यदि कहा गया कि 'अज्ञात शक्ति के कारण' तो यह प्रश्न के परित्याग के अतिरिक्त और कुछ भी न हुआ। सन्धियों में रस-सञ्चार शक्ति* (Osmosis) की क्रिया से विलक्षण परिणाम किस प्रकार उत्पन्न होते हैं यह जानने की बात है और जानी गई है।

प्राण में अभौतिक तत्त्व।

बहुत से प्राणिविज्ञानवेत्ता अपने विषय की छानबीन करते हुए यह स्पष्ट देखते हैं और बतलाते हैं कि प्राणियों के सब व्यापारों को समझने के पहले कुछ ऐसे कारणों को मान लेना आवश्यक है जिन पर अब तक ध्यान नहीं दिया गया। जे० आर० मेयर (J. R. Mayer) के समय से यह बात बराबर निश्चित होती जाती है कि अपनी क्रिया में प्राणी और वस्तुओं के समान भौतिक विज्ञान के नियमों के अनुकूल तो चलता है पर वह ऐसी प्रणालियों का सूत्रपात करता है और ऐसे ऐसे परिणाम उत्पन्न करता है जो उसके बिना सम्भव नहीं। चिड़ियों का घोंसला लीजिए, मक्खियों का छत्ता लीजिए, जंगी जहाज़ लीजिए। जंगी जहाज़ पर से आते हुए गोलों का कारण तो हम क्षमता (energy) आदि कह कर बतला देंगे पर वह शत्रु और मित्र की पहचान कैसे करता है इसका कोई वैज्ञानिक कारण हम नहीं बतला सकते। तूफ़ान और अग्नि आदि की गति बतलाई जा सकती है। लाप्लेस (Laplace's) के मानयंत्र द्वारा हम अणुओं की प्रारम्भिक स्थिति, वेग आदि बतला सकते हैं, पर कोई गणितज्ञ मक्खी की उड़ान से बनी हुई परिधियों का हिसाब नहीं लगा सकता। यदि किसी वैज्ञानिक विद्युद्यंत्र में कोई मकड़ी आ जाय तो वह उसकी बातों को तब तक बतलाता जायगा जब तक उसे अभौतिक (भूतों से परे) बातें न मिलने लगेंगी। मुझे यह कहने में कोई खटका नहीं कि प्राण भौतिक नियमों के बीच एक अप्रमेय और प्रयोजनीय तत्त्व का प्रवेश करता है। प्राण भौतिक नियमों में परिशिष्ट रूप से कुछ जोड़ देता है यद्यपि वह उनको ज्यों का त्यों रहने देता है और उनके अनुकूल चलता है।

हम प्राण नहीं देखते, उसका प्रभाव मात्र देखते हैं। जीवित प्राणी ही द्वारा निरिन्द्रिय (inorganic) द्रव्य सेन्द्रिय (organic) में परिवर्तित होता देखा जाता है। यह परिवर्त्तन वास्तव में होता है और उसकी प्रणाली का अध्ययन किया जा सकता है। इस परिवर्त्तन के लिए प्राण आवश्यक जान पड़ता है। यह परिवर्त्तन प्राणी ही के सहारे होता है यद्यपि इसकी प्रणाली भौतिक और रासायनिक है। परीक्षालयों में भी इस प्रकार के परिवर्त्तन प्राणी ही के द्वारा होते हैं यदि प्राणी परीक्षक न हो तो वे न हों।

सड़ाव, ख़मीरी उबाल, और व्याधि आदि केवल रासायनिक क्रियाएँ नहीं हैं। रासायनिक व्यापार वे हैं पर वे जीते जागते प्राणियों ही के अवलम्ब से होते हैं। जब औषध-विषय प्राणि-सम्बन्धी हो रहा है और शक्तिसम्पन्न लोगों का ध्यान उष्ण प्रदेशों को उद्योगी जातियों के स्वस्थतापूर्वक रहने के योग्य बनाने की ओर है तब प्राणिविज्ञान वालों को रसायन और भूत विज्ञान के पीछे अपनी विद्या को छोड़

* स्याही में सोख्ते का एक कोना छुलाने से इसका कुछ अनुभव होता है।

बैठने का प्रयत्न न करना चाहिए। प्राणि-विज्ञान एक स्वतंत्र विद्या है; वह भूत-विज्ञान और रसायन से काम लेता है, उसके अधीन नहीं हो जाता।

विज्ञान और अन्धविश्वास।

वैज्ञानिक लोग अन्धविश्वास से चिढ़ते हैं, और उनका चिढ़ना ठीक भी है क्योंकि बहुत से प्रचलित अन्धविश्वास ऐसे हैं जिनसे कुढ़न और घृणा होती है। पर कभी कभी इस शब्द का व्यवहार ऐसी बातों के लिए भी होता है जिनके नियम अज्ञात होते हैं। स्वयं प्राणिशास्त्रविदों के बहुत से व्यवहार ऐसे हैं जो ऊपर से देखनेवालों को बिलकुल अन्धविश्वास-मूलक जान पड़ते हैं। मलेरिया ज्वर की शान्ति के लिए सर रोनल्ड रास (Sir Ronald Ross) वेदी बना कर माला फूल तो नहीं चढ़ाते पर तालाब में तेल देते हैं—मानो उसके देवता का अभिषेक करते हैं। हाल में पनामा की नहर खोदते समय रोग को दूर रखने के लिए अमेरिकावालों ने जो टीन के रद्दी बरतनों में छेद करने के विलक्षण कृत्य पर ज़ोर दिया था वह देखने में जंगलीपन के सिवा और क्या मालूम होता था? और सब जाने दीजिए भूमि को अधिक उपजाऊ करने के लिए उसे जलाने वा ज़हरीली करने से बढ़ कर मूर्खता ऊपर से देखने में और क्या जान पड़ेगी? जो बात निश्चित जान पड़ती है वह यह है कि द्रव्य के बिना प्राण की कोई भौतिक व्यक्तता नहीं हो सकती। इसी से कुछ लोगों का यह कहना, या इस कहने को पसन्द करना, स्वाभाविक ही है कि "मैं द्रव्य में प्रत्येक प्रकार के प्राण की सम्भावना और सामर्थ्य देखता हूँ"। ठीक है, पर प्रत्येक प्रकार के प्राण की नहीं। प्रत्येक प्रकार के प्राण की भौतिक व्यक्तता की। क्योंकि प्राण हमें द्रव्य द्वारा व्यक्त होने के अतिरिक्त और किस प्रकार व्यक्त हो सकता है? यह भी कहा जाता है कि "प्राणी में हम रसायन और भूत-विज्ञान के नियमों के अतिरिक्त और कुछ पाते ही नहीं"। बहुत ठीक! यह भी स्वाभाविक ही है क्योंकि लोग प्राण के भौतिक वा रासायनिक रूप वा व्यक्तता का तो अध्ययन ही कर रहे हैं। स्वयं प्राण का, अर्थात् प्राण, मन और चेतना का, अध्ययन तो वे करते नहीं हैं; इनको तो वे अपनी छानबीन के बाहर रखते हैं। द्रव्य ही है जो हमारी इंद्रियों को ग्राह्य है। भूतवाद भौतिक जगत् के उपयुक्त है—पर दार्शनिक सिद्धान्त के रूप में नहीं बल्कि चलते हुए व्यापार की व्यवस्था के रूप में, बीच की कारण-परम्परा के अनुसन्धान के रूप में। इसके परे जो बातें हैं वे दूसरे विभाग की हैं और दूसरे उपायों से जानी जाती हैं। आध्यात्मिक बातों को रसायन और भूत-विज्ञान के शब्दों में बतलाना असम्भव है इसी से उनका अस्तित्व ही अस्वीकार किया जाता है, वे केवल भ्रान्ति-लक्षण माने जाते हैं। पर ऐसी अनधिकार मीमांसा अनुचित है।

प्राण और मन।

यद्यपि प्राण और मन शरीर-विज्ञान के बाहर हैं पर विज्ञान के बाहर नहीं हैं। यह कहना ठीक नहीं कि किसी वस्तु का हम उपयुक्त रीति से अनुसन्धान नहीं करते इसलिए उसका पता ही नहीं लग सकता। पर ऐसा कभी कभी कह दिया जाता है। ईथर इन्द्रियग्राह्य नहीं है इसीसे कुछ लोग कहने लगे हैं कि ईथर है ही नहीं। मन के विषय में भी कभी कभी यही कह दिया जाता है। प्राण का पता परीक्षालयों में नहीं लगता केवल उसकी रासायनिक और भौतिक व्यक्तता देखी जाती है पर यह मानना पड़ेगा कि वह एक विशेष रूप से द्रव्यों का परिचालन करता है। उसे हम निर्विकार (catalytic अर्थात् जो स्वयं विकृत न हो कर भी दो रासायनिक मिश्रणों में विकार उत्पन्न करता है) परिचालक कह सकते हैं। स्वयं प्राण के व्यापारों को समझने के लिए हमें सूक्ष्म जीवों की ओर न जाना चाहिए बल्कि स्वयं अपने को जीते जागते प्राणी समझ कर अपने ही अनुभवों की ओर ध्यान देना चाहिए। इस ओर ध्यान देते हुए यदि हम कोई भी दृष्टान्त ले लें तो प्राण के अस्तित्व को अस्वीकार करते न

बनेगा । यदि मन तथा उसकी प्रेरणा और क्रम-व्यवस्था इस कारण अस्वीकार की जाती है कि वह इंद्रियग्राह्य नहीं है तो एक ऐसे प्राणी का दृष्टान्त लीजिए जिसके सामने जगत् के सब नियम और व्यापार इसी प्रकार चल रहे हैं पर कोई मनुष्य वा जीव नहीं दिखाई देता। सोचिए तो कि ये सब व्यापार उसे कैसे जान पड़ेंगे । मान लीजिए कि इस दूसरे ग्रह के प्राणी को मनुष्य गोचर ही नहीं हैं । ऐसी अवस्था में इन व्यापारों को वह ऐसा ही बतलावेगा जैसा हम आज अपने व्यापारों को बतलाते हैं ।

यदि वह फ़ोर्थ नदी के मुहाने (Firth of Forth) के पुल को देखेगा तो उसे पानी में उठे हुए खंभे दिखाई देंगे जो ऊपर की ओर जाकर विलक्षण रीति से मिल गए हैं । इन पर से वह कीड़ों की तरह की वस्तुएं बिना उनका प्रयोजन समझे आते जाते देखेगा । फिर मान लीजिए कि वह नील नदी की ओर देखता है और रेगिस्तान के बीच हरियाली उत्पन्न करने में उसकी उपयोगी गति की ओर ध्यान देता है । इसके उपरान्त आगे चल कर वह धारा के बीचों बीच उठता हुआ बाँध देखता है । उसके देखने में बड़े बड़े ढोंके एक प्रकार की ध्रुव शक्ति वा जड़ प्रवृत्ति (Heliotropism-पौधों की पत्तियों आदि के प्रकाश की ओर झुकने की प्रवृत्ति) द्वारा अपनी अपनी जगह पर जाकर बैठते जान पड़ेंगे । यहाँ तक तो उसे भूत-विज्ञान और रसायन के नियमों के आगे जाने की आवश्यकता न होगी; वह द्रव्य की क्षमता (energy) आदि द्वारा सब बातें समझ बूझ लेगा । उसे पहले किसी प्रकार की क्रम-व्यवस्था भी न दिखाई देगी । क्योंकि यद्यपि इस प्रकार के बाँध से पानी रुक कर ऊपर की ओर फैलता और वनस्पति उत्पन्न करता दिखाई देगा पर नीचे की ओर उसके इस प्रकार रुकने से और रेगिस्तान में नष्ट होने से हानि ही दिखाई देगी । पर इसके उपरान्त जब उसे नीचे फूटे हुए बड़े बड़े छेद दिखाई देंगे जिनसे नीचे नीचे आगे की ओर पानी बराबर जाता हुआ और अन्त में वनस्पति को लाभ ही पहुँचाता हुआ दिखाई देगा तब उसे 'उद्देश्य' का आभास मिलेगा ।

क्रम-व्यवस्था का प्रमाण ।

अब यदि इन दोनों बनावटों में से किसी के विषय में वह कहे कि इसे लंडन के एक इंजिनियर सर बेंजमिन बेकर (Sir Benjamin Baker-फ़ोर्थ नदी का पुल बनवानेवाले) ने बनाया है तो उसका यह कहना उसके साथियों को उपहासास्पद ही जान पड़ेगा । ऐसे कथन के विरुद्ध सबसे पक्की दलील तो यह होगी कि वह वहाँ है नहीं; और जो वस्तु जहाँ है नहीं वहाँ कोई काम नहीं कर सकती । यदि बहुत सी बातें मालूम होने से हम कहेंगे कि इस प्रकार के तटस्थ निरीक्षक को कोई अज्ञात परिचालक वा कर्त्ता मान लेना चाहिए; परन्तु साथ ही यह भी है कि व्यापारों को अज्ञात-शक्ति के कार्य्य बतलाना व्यर्थ होगा । रसायन और भौतिक विज्ञान के शब्दों ही में जितनी व्याख्या की जायगी उतनी ही स्पष्ट, निर्दिष्ट और जहाँ तक उसकी पहुँच है सत्य होगी । वह अपूर्ण होगी इसमें तो सन्देह नहीं । यह बात समझ रखनी चाहिए कि ऐसी अवस्थाओं में जो कुछ हम देखते हैं वह अन्तःकरण और द्रव्य की पारस्परिक क्रिया है, भ्रान्तिलक्षण (epiphenomenon) वा समन्वय (parallelism) नहीं हैं । उसमें हम द्रव्य और द्रव्यक्षमता (energy) के गुणों का ऐसे उद्देश्यों की सिद्धि के लिए सीधा उपयोग देखते हैं जिनका प्रादुर्भाव अन्तःकरण में होता है । पर प्रतिपक्षी कहेंगे कि इस प्रकार के दृष्टान्त देना अनुचित है क्योंकि फ़ोर्थ नदी के पुल और नील नदी के बाँध के विषय में हम जानते हैं कि वे एक क्रम पर बने हैं और उनके बनानेवालों को भी हम जानते हैं ।

अर्थात् ये कट्टर प्राणिविज्ञानवेत्ता बराबर कहेंगे कि "यह सब कुछ नहीं । जहाँ जो कुछ हम देखते हैं सब भूतविज्ञान और रसायन की क्रियाएँ हैं । ऐसे ऐसे कामों में जो अन्तःकरण की स्वतंत्र क्रिया

का भान होता है वह भ्रान्ति है। भौतिक ग्रैार रासायनिक नियम ही जो कुछ हैं सो हैं ग्रैार उन्हीं से सारी बातों के हेतु ग्रादि का पता लग सकता है।" ठीक है! पर उनसे कुछ दूर ही तक का पता लगता है। वे सूर्यास्त के रंग, पर्वत शृंग की विशदता, जीवों के चमत्कार ग्रादि के हेतु की व्याख्या कुछ ग्रंशों ही तक करते हैं। क्या वे सब बातों के कारण पूर्ण रूप से बता सकते हैं? क्या वे हमारे ग्रानन्द की उमंग, ग्रैार सैान्दर्य्य के भाव ग्रादि का पूरा पूरा हेतु दे सकते हैं? क्या इनके द्वारा (भौतिक ग्रैार रासायनिक से) अधिक उच्च, महान् ग्रानन्दप्रद बातों का ग्राभास नहीं मिलता जिनके लिए जीवन की यह सब हाय हाय है।

इसमें सन्देह नहीं कि प्राकृतिक पदार्थों के भीतर एक गूढ़ रहस्य भरा हुग्रा है। कट्टर वैज्ञानिक इस विषय में जो बातें बतलाते हैं वे यद्यपि अपनी पहुँच के अनुसार ठीक हैं पर ग्रांशिक हैं। जब हम मोर की पूँछ की रंगबिरंगी चंद्रिकाग्रों ग्रैार ज़ेब्रा की पीठ पर की धारियों में रंगों का विचित्र मेल देखते हैं कि किस प्रकार वे अपनी अपनी जगह पर एक निश्चित नमूने ग्रैार नक़शे को भरते हुए बैठे हैं तब यह कहना अत्यन्त कठिन होजाता है कि ऐसी क्रमव्यवस्था के साथ ग्रंगों का परस्पर मेल केवल पदार्थ नियमों द्वारा होता है। फूल उर्वरता के लिए कीड़ों को ग्राकर्षित करते हैं, ग्रैार फल बीजों को फैलाने के लिए जानवरों को ग्राकर्षित करते हैं। पर उनके सम्बन्ध में इतनी ही व्याख्या काफ़ी नहीं है। हमें स्वयं कीड़ों की स्थिति को समझना समझाना है। फूलों में इतनी सुन्दरता केवल कीड़ों को ग्राकर्षित ही करने के लिए नहीं है। हमें जीवन के लिए जो इतनी हाय हाय रहती है उसे समझना चाहिए। जीव अपनी स्थिति के लिए इतना प्रयत्न क्यों करते हैं। इस प्रयत्न का कोई रहस्य होगा ग्रैार विकाश का कोई उद्देश्य होगा। इस रीति पर विचार करने से हमारे सामने जीवन ग्रैार विकाश का प्रश्न ग्राता है।

जिस पदार्थ-योजना से जीवन का विकाश होता है वह बहुत कुछ जान ली गई है। स्वाभाविक ग्रहण-प्रवृत्ति (Natural Selection) का सिद्धान्त जहाँ तक पहुँचता है कारण ग्रादि बताता है। पर यदि इतने सैान्दर्य्य की ग्रावश्यकता कीड़ों के लिए है तो हम वन, पर्वत ग्रैार मेघमाला ग्रादि के सैान्दर्य्य के विषय में क्या कहेंगे? उनके सैान्दर्य्य से कैान सा काम निकलता है, कैान सा भौतिक अर्थ-साधन (utility) होता है। विज्ञान सैान्दर्य्य की विवेचना नहीं करता। न करे, पर उसका अस्तित्व ग्रवश्य है। मैं उसके विषय में यहाँ तर्क वितर्क नहीं करना चाहता। मैं केवल इस बात की ग्रोर ध्यान दिलाना चाहता हूँ कि हमारे अनुसन्धान में ब्रह्मांड की सारी बातें नहीं ग्राजातीं। इससे यदि हम निषेध करने चलते हैं ग्रैार कहते हैं कि भूत-विज्ञान ग्रैार रसायन ही के अन्तर्गत हम सारी बातों को ला सकते हैं तो हम केवल संकीर्ण पांडित्य का दम्भ दिखाते हैं ग्रैार अपने मनुष्य-जन्म के अधिकार की पूर्णता ग्रैार समृद्धि खोते हैं। इसके विरुद्ध एक भावुक पूर्वीय कवि की उक्ति कितनी उचित है—

जगत् अपनी दृष्टि को तेरे चरणों पर झुकाए सारे मैान नक्षत्रों के साथ स्तम्भित ग्रैार चकित खड़ा है'।

हमारी भौतिक पहुँच बहुत थोड़ी है। हमारी इन्द्रियाँ द्रव्य ही को ग्रहण करने के लिए उपयुक्त हैं, उसके अतिरिक्त ग्रैार बातों का बोध हमें सीधे नहीं होता। हमारे ग्रंग द्रव्य में इच्छानुकूल परिवर्त्तन उपस्थित करने के उपयुक्त हैं, इसके अतिरिक्त हम ग्रैार कुछ नहीं कर सकते। हमारा मस्तिष्क भौतिक जगत् के शेषांश से हमारा सम्बन्ध कराता है। हमारी इन्द्रियाँ हमें द्रव्य के क्रम ग्रैार गति की सूचना देती हैं ग्रैार हमारे ग्रंग हमें उन क्रमों में परिवर्त्तन करने में समर्थ करते हैं। मानवजीवन के लिए बस इतना ही सामान हमारे पास है। इन अधिकारों को ले कर हमने जो कुछ किया है वह मनुष्य-जाति के इतिहास में दर्ज है।

विकाश में अखंडत्व।

विज्ञान द्वारा जो हमने यह जान लिया कि विकाश वास्तव में होता है सो बहुत कुछ किया। विज्ञान की दृष्टि से विकाश परम सत्य है। विकाश भ्रान्ति नहीं है। सृष्टि काल पाकर होती है। दिक्‌काल और द्रव्य सार-निरूपण (Abstractions) हैं पर सत्य हैं। अनुभव से उनकी प्रतिपत्ति होती है। काल ही विकाश का प्रवर्त्तक है। 'सैकड़ों वर्ष आते जाते हैं और एक जंगली फूल को उन्नत और पूर्ण करते हैं"। जीते जागते चलते फिरते सत् (Reality) से हम उसके एक स्थूल रूप का सारग्रहण (Abstract) करते हैं और उसे द्रव्य कहते हैं, इसी प्रकार उसकी अग्रसरता वा उन्नति के तत्त्व को हम साररूप से ग्रहण करते हैं और उसे काल कहते हैं। जब इन दोनों सारों का संयोग और सहकार्य्य होता है तब हमें फिर सत् का भान होता है। विकाशसिद्धान्त में काल का वास्तविक अस्तित्व मिलता है।

मुझे सारी भौतिक सत्ता भूत से भविष्य की ओर जाती हुई एक गति के रूप में दिखाई देती है। उसका एक ही अंश वा क्षण जो वर्त्तमान कहलाता है व्यक्त वा प्रत्यक्ष होता है *। भूत का अत्यन्ताभाव नहीं होता। उसका लेखा हमारी स्मृति में रहता है, द्रव्य में रहता है और वह वर्त्तमान का आधार होता है। भविष्य वर्त्तमान का फल है और विकाश की उपज है।

सृष्टि करघे के तैयार माल के समान है। बुनावट का नक़शा नमूना वहाँ किसी न किसी रूप में पहले से रहता है। एक बार नमूने पर चलानेवाली पटरियाँ लगा दी जाती हैं फिर तो उस कालरूपी करघे में बहुत से स्वतंत्र परिचालक हो जाते हैं जो तन्तुजाल में जैसा फेर फार चाहें कर सकते हैं अर्थात् यदि वे काल-व्यवस्था के अनुकूल चलते हैं तो माल अच्छा होता है और प्रतिकूल चलते हैं तो बुरा। मेरी समझ में लोक में जो त्रुटियाँ दिखाई देती हैं उनका समाधान इससे होजाता है। स्वतंत्रता और किसी शर्त्त पर दी ही नहीं जा सकती। उसका सौदा इससे सस्ता हो ही नहीं सकता। अपने कर्म्मों द्वारा सुख वा दुःख उत्पन्न करने की सामर्थ्य भ्रम नहीं है सत्य है। चेतन कर्ता की यह एक ऐसी सामर्थ्य है जिसके ऊपर उसकी भलाई बुराई छोड़ दी गई है। अतः जो माल तैयार वा जो फल उत्पन्न होता है वह कोई पूर्व निर्धारित वा अटल वस्तु नहीं, यद्यपि हम आचरण के पूरे परिचय द्वारा कभी कभी उसका निश्चय कर सकते हैं। काल की एकरूप गति के अतिरिक्त और कोई वस्तु अटल नहीं। कपड़ा बुना जायगा यह बात तो रहती है पर उसका नक़शा नमूना न पूरा निश्चित रहता है और न पदार्थ-नियम द्वारा उसका कोई हिसाब किताब हो सकता है।

जहाँ केवल निरींद्रिय (Inorganic) द्रव्य का मामला रहता है वहाँ सब बातें निश्चित होती हैं। पर जहाँ कहीं पूर्ण चेतना का प्रवेश होता है वहाँ नई शक्तियाँ उत्पन्न हो जाती हैं और चेतन अंशों की सामर्थ्य और इच्छा का प्रभाव समष्टि पर पड़ता है। इस समष्टि को प्रेरणा बाहर से नहीं भीतर से होती है और प्रेरणा करनेवाली शक्ति प्रत्येक क्षण अन्तर्व्याप्त रहती है। इस प्रेरणा-शक्ति के हम एक क्षुद्र अंश हैं पर बिलकुल निकम्मे नहीं।

विकाशोन्नति सत्य है, यह एक बड़े महत्त्व का सिद्धान्त है। सामाजिक उन्नति के लिए हमारे प्रयत्न इसलिए उचित हैं कि हम समष्टि-विधान के एक अंग हैं; अंग भी कैसे जो चेतन होगया है, जो थोड़ा बहुत समझता है कि वह क्या कर रहा है और उसका उद्देश्य क्या है। अस्तु-समष्टि में उद्देश्य और विधान का अभाव नहीं हो सकता क्योंकि हम

---

* श्रीकृष्ण भगवान् ने भी गीता में अर्जुन से कहा है—
अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत।
अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना॥

उसके एक अंग हो कर अपने आप में उनका अनुभव करते हैं ।

विज्ञान और आध्यात्मिक अन्वेषण ।

या तो हम अमर हैं या नहीं हैं । हम अपना भविष्य नहीं जानते, पर हमारा किसी प्रकार का भविष्य है अवश्य । जो अस्वीकार करते हैं वे वैसे ही भ्रान्त हो सकते हैं जैसे वे जो स्वीकार करते हैं । लोग वैज्ञानिकों को अधिकारी समझ उनसे ऐसी बातों की जिज्ञासा करते हैं अतः उन्हें ध्यान रखना चाहिए कि वे लोगों को भ्रम में न डालें। वैज्ञानिक लोग मानव जीवन के आगे के भविष्य को नहीं जान सकते। न सही, पर वे उस पर धूल क्यों डालें ? जो बात जैसी है वैसी ही रहेगी, चाहे हम उसे जानें या न जानें । यदि हम बिना समझी बूझी बातें कह जाँयगे तो हमारी भावी सन्तति को हमारी असत्यता का पता लग जायगा । मैं उन लोगों में हूँ जिनकी धारणा है कि विज्ञान की अनुसन्धान-प्रणाली उतनी परिमित नहीं है जितनी समझी जाती है । उसका उपयोग और दूर तक हो सकता है और आध्यात्मिक अनुसन्धान भी नियम-बद्ध किए जा सकते हैं । इसके लिए प्रयत्न होने देना चाहिए। जो भूतवाद (Materialistic hypothesis) के सिद्धान्तों को उन्नत और परिवर्द्धित किया चाहते हैं वे ख़ुशी से जहाँ तक चाहें वहाँ तक करें, पर हमको आध्यात्मिक विभाग में अनुसन्धान करना चाहिए और देखना चाहिए कि अन्त में विजय किसकी होती है । अनुसन्धान की जो प्रणाली उनकी है वही हमारी है, भेद केवल विषय का है । इनमें से किसी को भी दूसरे को भला बुरा न कहना चाहिए ।

यद्यपि मैं यहाँ कट्टर विज्ञान का प्रतिनिधि बन कर खड़ा हूँ पर अपने ३० वर्ष के आध्यात्मिक अनुसन्धान के अनुभव को बिना कहे न रहूँगा और हमारे सभापति भी शायद विज्ञान की कट्टरता से बद्ध और परिमित होकर न बोलेंगे जैसा कि आज कल का फ़ैशन है ।

शरीर-वियोग के उपरान्त भी व्यक्तित्व बना रहता है । यहाँ पर यदि न्याय से पूछा जाय तो मैं केवल इतना ही नहीं कहता कि जो बातें अभी अदृष्टवाद के अन्तर्गत समझी जाती हैं वे वैज्ञानिक प्रणाली द्वारा जाँची और नियमबद्ध की जा सकती हैं बल्कि यहाँ तक कहता हूँ कि जहाँ तक परीक्षा हुई है उनसे मुझे यही निश्चय हुआ है कि स्मृति आदि अन्तःकरण वृत्तियाँ द्रव्य के उस सम्बन्ध ही तक परिमित नहीं हैं जिसके द्वारा हमें वे व्यक्त होती हैं और शरीर-वियोग के उपरान्त भी व्यक्तित्व बना रहता है । परीक्षा द्वारा मुझे यह प्रतीत होता है कि शुद्ध भूत-निर्लिप्त ज्ञान का हमारे साथ पारस्परिक व्यापार भौतिक विभाग में दिखाई देता है और इस प्रकार घुमाव फिराव के साथ वह हमारी वैज्ञानिक परीक्षा के अन्तर्गत आ सकता है । इससे आशा होती है कि शायद धीरे धीरे हम लोग अधिक विस्तृत, शायद ईश्वरीय, स्थिति को और फिर उन नियमों को जिनके अनुसार शून्य के बीच पारस्परिक व्यापार-व्यवस्था होती है, समझ सकें । कुछ सच्चे और विश्वस्त अन्वेषक आशापूर्वक ज्ञान के एक नए क्षेत्र का आभास दे रहे हैं । इससे और अधिक हम यह कह सकते हैं कि सत्य की छानबीन के लिए एकमात्र वैज्ञानिक ही प्रणाली नहीं है, यद्यपि यह प्रणाली हमारे उपयुक्त है ।

नये युग के प्रदर्शक ।

बहुत से वैज्ञानिकों को अब भी ब्रह्मविद्या वा परमात्म-विद्या (Theology) से चिढ़ मालूम होती है क्योंकि उनके पूर्ववर्त्तियों को तत्सम्बन्धी बहुत से अत्युक्त वितंडावादों का सामना करना पड़ा था । उन्हें अपने ढँग पर सत्य और स्वतंत्रता का रास्ता साफ़ करने में बहुत लड़ना झगड़ना पड़ा था । इस लड़ाई झगड़े की नौबत दुर्भाग्यवश आई थी और उसका बहुत कुछ बुरा प्रभाव अब तक रह गया है। उन बुरे प्रभावों में से एक यह है जिसके कारण हमारी सहानुभूति सत् के अन्य आध्यात्मिक आदि

रूपों की ओर नहीं होती और हम उनसे खिँचे रहते हैं। यह हम कभी नहीं कह सकते कि इस लोक में सत्य का प्रादुर्भाव केवल दो एक शताब्दियों से ही होने लगा। वैज्ञानिक काल के पूर्व की प्रतिभा की—कवियों और महात्माओं की प्रतिभा की—पहुँच भी बड़े महत्त्व की थी। उन प्राचीन महात्माओं का ब्रह्मांड की आत्मा के विषय में बहुत कुछ प्रवेश था। उनके पीछे जो उनके अनुयायी हुए उनको इतनी सूझ नहीं थी, उनमें केवल हठ और दुराग्रह था जिसके कारण वे नए (वैज्ञानिक) युग का आभास देने वालों को पत्थर मारते थे।

अन्त में इस नए युग की विजय हुई और अब पत्थर हमारे (नए युग के वैज्ञानिकों के) हाथ में है। पर हम भी जो उन पुराने धर्म्माचार्यों की नक़ल करें तो यह मूर्खता है। हम यह कह कर कि ब्रह्मांड के अनेक प्रकार के रहस्यों की छानबीन के लिए हमारी ही प्रणाली उपयुक्त है और सब प्रणालियाँ कुछ नहीं हैं, पुरानी भूल को क्यों दोहरावें। ब्रह्मांड के विषय में हमारी जो धारणा है उससे वह कहीं बढ़ कर है; खोज की कोई एक प्रणाली उसके सारे रहस्यों को पूरा छान नहीं सकती।

सच्चे धर्म का मूल मनुष्य जाति के अन्तःकरण में, और वस्तुओं की सत्यता में है। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि अपनी अनुसन्धान प्रणाली से हम उसका ग्रहण नहीं कर सकते। परमात्मा के कार्य हमारी किसी विशेष इन्द्रिय को ग्राह्य नहीं हैं, और हमारी अनुसन्धान प्रणाली ऐसी है जिससे किसी अखंड एकरूपता का पता ही नहीं लग सकता। यहाँ पर सापेक्षिकता का सिद्धान्त चलता है इससे जब तक हमें कोई व्याघात और भेद नहीं मिलते तब तक हमें कोई परिज्ञान नहीं होता। हम लोग अपने चारों ओर की अन्तर्व्याप्त विभूति को देख सुन नहीं सकते; इतना ही कर सकते हैं कि काल रूपी करघे से निकल कर पूर्णता की ओर अनन्त गति से गमन करते हुए वस्त्र को भूतों से परे उस परमात्मा का परिधान समझें।

हिंदी पर प्राकृत भाषाओं का प्रभाव।

[ले० बाबू जगन्मोहन वर्म्मा]
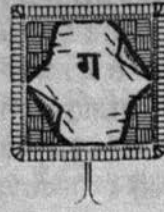
त वर्ष जब कलकत्ते में साहित्य-सम्मेलन का तृतीय अधिवेशन होनेवाला था उस समय वहाँ की स्वागतकारिणी समिति ने मुझ से ऊर्ध्व लिखित विषय पर लेख भेजने की आज्ञा दी थी। पर उस वर्ष समय कम रहने से मैं उसका पालन न कर सका। इस वर्ष भागलपुर के सम्मेलन की स्वागतकारिणी समिति के मन्त्री ने फिर मुझे उक्त विषय पर लेख भेजने के लिए आज्ञा देने की कृपा की है। यद्यपि इस वर्ष इस विषय पर लेख भेजने के लिए कई ऐसे विद्वानों से भी प्रार्थना की गई है जो इस विषय में अपने को प्रसिद्ध कर चुके हैं और जिनके सामने मेरा कुछ कहना साहस मात्र है फिर भी सम्मेलन की आज्ञा को शिरोधार्य्य करके मैं दो चार बातें इस विषय में कहना चाहता हूँ।

'प्राकृत' शब्द के भाषा अर्थ में दो अर्थ होते हैं एक प्रकृति अर्थात् जन साधारण के बोल चाल की भाषा जो समय समय पर भिन्न भिन्न होती आई है और वैदिक भाषा से लेकर आज तक की बोल चाल की भाषाएँ हिंदी, बँगला, मरहठी, गुजराती, पंजाबी आदि सभी जिसके अन्तर्भूत हैं, दूसरे प्रकृति* अर्थात् संस्कृत से व्याकरण-नियम द्वारा बनाई हुई कल्पित प्राकृत भाषा जो नाटकों और जैन-साहित्य में मिलती है।

पहले के विषय में तो हमें कुछ विशेष कहने की आवश्यकता नहीं केवल इतना कहना है कि साहित्य की भाषा सदा लौकिक वा प्रांतिक भाषा से विलक्षण होती आई है। यद्यपि उसमें सभी प्रान्तों

*'प्रकृतिः संस्कृतं तत्र भवः तत आगतो वा प्राकृतम्' हेमचन्द्र। तथा 'प्रकृतिः संस्कृतं तत्र भवत्वात्प्राकृतं मतम्' प्राकृतचंद्रिका।

की भाषा के शब्द होते हैं और उसे सर्वसाधारण समझ भी सकते हैं पर वह किसी एक प्रान्त की भाषा नहीं होती बल्कि वह एक ऐसी भाषा होती है जिसे समझ तो सभी सकते हैं पर उसमें लिख केवल विद्वान् ही सकते हैं, इसीलिए ऐसी भाषा को देववाणी देवगिरा आदि कहते हैं। उदाहरण के लिए हिंदी-भाषा ही को लीजिए। इसे समझते सब हैं पर विशुद्ध रूप से केवल पढ़े लिखे लोग ही लिख और बोल सकते हैं। यद्यपि इसका ढाँचा एक प्रान्त का है पर अब इसे सर्वथा प्रान्तिक नहीं कह सकते क्योंकि इसके विस्तार के कारण इसमें दिल्ली, मेरठ के अतिरिक्त और और प्रान्तों की बोलियों के शब्द ही नहीं बल्कि संस्कृत, फ़ारसी और अँगरेज़ी तक के शब्द मिल गये हैं। यही अवस्था वैदिक भाषा की है। उसमें म्लेच्छ भाषा तक के शब्द हैं और कितने ही प्रान्तिक प्रयोग भी हैं*।

अब दूसरी प्राकृत का हाल सुनिए। इसके प्रधान दो भेद हैं—आर्य्य प्राकृत और जैन प्राकृत।

आर्य्य प्राकृत के वररुचि आदि विरचित कई व्याकरण हैं और जैन प्राकृत के हेमचन्द्राचार्य्य आदि के ग्रन्थ हैं। इन प्राकृतों में यद्यपि उस समय की प्रांतिक बोल चाल के शब्द हैं पर वे सर्वथा न बोल चाल ही की भाषाएँ हैं और न ऐसी ही भाषाएँ हैं जिनका प्रयोग किसी समय में विद्वानों में होता था। इन ग्रन्थों के देखने से यह भी अनुमान होता है कि वैयाकरणों ने प्राकृत के सौरसेनी, मागधी, पैशाची अपभ्रंश इत्यादि अनेक भेद किये हैं। पर यह उनका साहस मात्र है क्योंकि यह कभी स्वीकार नहीं किया जा सकता कि उन वैयाकरणों के पास ऐसे साधन थे जिनसे वे सभी प्रांतों की प्राकृत बोलियों का अवगाहन करने में समर्थ हुए होंगे। श्रद्धा करनेवाले महात्माओं की तो बात ही जुदी है। जिनके मत में त्रिकालज्ञ सर्वज्ञ तक हो सकते हैं वे लोग सब कुछ मान सकते हैं और उनके लिए सब कुछ संभव है। पर इस प्रमाण-प्रधान युग में शायद ही कोई ऐसे महात्मा सभ्य समाज के सामने खड़े होकर यह कहने का साहस करें कि "वे लोग त्रिकालदर्शी थे अतः उन लोगों ने जो कुछ लिखा सब अपने योग बल द्वारा जान कर ही लिखा, और उस समय भारत के भिन्न भिन्न प्रान्तों में उन्हीं भाषाओं का प्रचार था जो उन वैयाकरणों के सूत्रों से सिद्ध

---

* वैदिक मन्त्रों में अनार्य्य शब्द भी हैं यह मेरा निज का सिद्धान्त नहीं। हम से बहुत पूर्व के महर्षि जैमिनि ने भी वेदों में ऐसे शब्दों का होना स्वीकार किया है। मीमांसादर्शन अध्याय १ पाद ३ सू० १० चोदितं तु प्रतीयेताविरोधात् प्रमाणेन।

इस पर शबर स्वामी लिखते हैं:—अथ यान् शब्दान् आर्य्या नकस्मिंश्चिदर्थे आचरन्ति, म्लेच्छास्तु कस्मिंश्चिन्प्रयुञ्जन्ते यथा पिक, नेम, सत तामरसादिशब्दास्तेषु सन्देहः, किंनिगम निरुक्तव्याकरणवशेन धातुतोऽर्थः कल्पयितव्यः, उत यत्र म्लेच्छा आचरन्ति स शब्दार्थ इति। शिष्टाचारस्य प्रमाणमुक्तं नाशिष्टस्मृतेः। तस्मान्निगमादिवशेनार्थकल्पना। निगमादीनां चैवमर्थवत्ता भविष्यति। अनभियोगश्च शब्दार्थेष्वशिष्टानाम्, अभियोगश्चेतरेषाम्। तस्माद्धातुतोर्थः कल्पयितव्य इत्येवं प्राप्ते ब्रूमः—चोदितमशिष्टैरपि शिष्टानवगतं प्रतीयेत, यत् प्रमाणेनाविरुद्धं तदवगम्यमानं न न्याय्यं त्यक्तुम्। यत्तु शिष्टाचारः प्रमाणमिति—तत्प्रत्यक्षानवगतेऽर्थे। यत्त्वभियुक्ताः शब्दार्थेषु शिष्टा इति, तत्रोच्यते-अभियुक्ततरापक्षिणां पोषणे बंधने च म्लेच्छाः। यत्तु निगमनिरुक्तव्याकरणानामर्थवत्तेति—तत्तेषामर्थवत्ता भविष्यति, न यत्र म्लेच्छैरप्यवगतः शब्दः। अपि निगमादिभिरर्थे कल्प्यमाने अव्यवस्थितः शब्दार्थो भवेत्—तत्राऽनिश्चयः स्यात्। तस्मात् पिक इति। (वाजसनेयिसंहितायां) कोकिलो ग्राह्यः नेमोर्द्ध (हिंत जनिम नेमभूद्यतम् ऋ० ६। ६८। ५) तामरसं (?) पद्मं, सत (स तेन द्रोणकलसम् वा सं० १९। २७) इति दारुमयं पात्रं, परिमण्डलं शतछिद्रम्।'

अर्थात् पिक, नेम, तामरस, सत इत्यादि शब्द विदेशी हैं।

इसी प्रकार कहीं 'कोवेद' का 'कुविद' जैसे—कुविन्मां गोपां करसे जनस्य इत्यादि, कहीं 'रत्न' का 'रतन', कही देवा का देवासो, हंति का हनति, इत्यादि इत्यादि लौकिक प्रयोग मिलते हैं जिनमें किसी को निपात, किसी को आर्ष, किसी को व्यत्यय कह के वैयाकरण अपना पल्ला छुड़ाते हैं।

होती हैं" । अपने इस विचार की पुष्टि में हम यहाँ कुछ स्थालीपुलाक न्याय से ऐसे प्राकृत शब्दों के नमूने पेश करते हैं जिनका वा जिनके विकारों का प्रयोग किसी काल में किसी भाषा में किसी प्रकार से कोई समझदार मान ही नहीं सकता। इससे यह स्पष्ट रूप से प्रतीत होता है कि नाटकों वा जैनियों की प्राकृत भी कभी बोलचाल की भाषा न थी, वह केवल वैयाकरणों की गढ़ी हुई एक कल्पित भाषा थी जिसका प्रयोग केवल लिखने में उन वैयाकरणों के पीछे होने लगा।

संस्कृत	प्राकृत
पताका	पडाआ
पन्थः	पहो
पिशाचः	पिसल्लो, पिसाओ
प्रतिज्ञा	पईणा
मयूखः	मोहो, मउहो
भजनम्	भाअणं, भाणं
प्रभूत	बहुअ
भ्रमर	भसर
अपस्मारः	अम्हलो
पद्मः	पडमो, पोम्मो
रत्नम्	रअणं, रयणं
ललाटः	णड़ालो, णिडालो, णलाडो
बज्रम्	बइरं
विष्णु	आदियो
शकटः	सअड़ो
स्थानम्	ठीणं, थीणं

बात यह है कि आदि प्राकृत वैयाकरण ने—चाहे वह चंड वा जो कोई हो—अपने समय की जीती जागती भाषा के थोड़े से अपूर्ण और अव्याप्त नियम बनाए। पीछे कुछ काल बीत जाने पर जब आदि वैयाकरण की भाषा भी बोलचाल से उठ गई तब कुछ वैयाकरण उन अपूर्ण नियमों को अतिव्याप्त बनाकर उनके अनुसार सिद्ध करके बहुत से नये शब्द गढ़ने लगे, जैसे प्राचीन वैयाकरण ने एक नियम किया कि स्वर के परे 'क' का लोप हो जाता है (पर यह नियम उनका बिलकुल व्यापक नहीं था) जैसे 'कोइल' (कोकिल) आदि शब्दों में। फिर क्या था पीछे के महात्माओं ने जितने इस प्रकार के 'क' कार मिले सब का लोप करना शुरू किया और 'सकल' से 'सअल' आदि बहुत से शब्द गढ़ डाले। वृत्तिकारों ने भी सूत्रों के उदाहरण देने में यही ग़लती की है। यद्यपि आदि आचार्यों ने साफ़ कह दिया था कि हमारे ये नियम विभाषा वा विकल्प से लगते हैं। सारांश यह कि एक समय की प्रचलित भाषा के अपूर्ण और अव्याप्त नियमों को लेकर दूसरे समय के लोगों ने, जब कि उन नियमों की चरितार्थता की जाँच का साधन नहीं रह गया (अर्थात् वह भाषा उठ गई जिसे देख कर वे अपूर्ण नियम बने थे), बहुत से बेढंगे शब्द बना डाले और एक कल्पित भाषा की सृष्टि की। यहीं तक नहीं, संस्कृत के समकक्ष एक नया सर्वाङ्गपूर्ण व्याकरण खड़ा करने के लिये सैकड़ों नये नियम बनाए गए। जान बूझ कर भाषा का यह कृत्रिम ढड्ढा खड़ा करने में हेमचन्द्र ने बड़ी बहादुरी दिखाई। संज्ञा शब्दों के उदाहरण तो ऊपर दिए गए। कुछ उन क्रियाओं और धातुओं के उदाहरणों का भी नमूना देखिये जो इन त्रिकालज्ञ वैयाकरणों के सूत्रानुसार बनती हैं। यहाँ एक बात बतला देने की अत्यन्त आवश्यकता है कि इन सूत्रकारों ने मनमाने आदेश किए हैं उनका लक्ष्य नाद वा स्फोट के नियम पर नहीँ था और न उन्होंने निरुक्त (Philology) पर ही कुछ ध्यान दिया।

संस्कृत 'म्लै हर्षक्षये' धातु के स्थान में वररुचि ने 'म्लैवावाओ' सूत्र से वा और वा औ आदेश किया है। भला सोचिये तो सही कि 'म्लै' का किस स्फोट नियम से वा और वा औ होगा। इसी प्रकार हेमचंद्राचार्य्य ने संस्कृत कथ धातु के स्थान में 'कथेर्धातोर्वज्जर-पज्जरोप्पाल-पिसुण, सङ्घबोल्लजम्प सीससाहाः।' से वज्जर, पज्जर, उप्पाल, पिसुण,

सङ्कबोह्ल, चव, जम्प, सीस, साह आदेश कर डाले हैं। अब पाठक विचारिये तो सही क्या इन सब का कथ से विकृत होकर निकलना संभव है। मेरी समझ में तो वज्र, से वज्जर, पज्जर; उपल से उप्पाल; पिसुन से पिसुण; शंस वा शंक से सङ्क, ब्रुव से बोह्ल, चर्व से चव, जल्प से जम्प, शिक्ष वा शिष से सीस, तथा शास् से सह निकला है। इसी प्रकार 'स्मृ' धातु के स्थान में 'स्मरेर्झरझर, भल, लढ़, विम्हर, सुमर, पयर, पम्हुहाः' से झर झर, भल, लढ़, विम्हर, सुमर, पयर, पम्हुस् आदेश किए हैं जिनमें 'सुमर' के। छोड़ शेष सब कल्पित तथा दूसरे संस्कृत शब्दों से बने प्रतीत होते हैं। 'विम्हर' 'विस्मृ' का और 'पम्हुसं' 'प्रस्मृ' का विकार प्रतीत होता है जिसे 'विम्हुः पम्हुस विम्हर वीसराः में उन्होंने स्वीकार किया है। इनमें 'वीसर' अति शुद्ध प्रतीत होता है।

आजकल कितने विद्वान् जिनका यह कथन था कि वर्त्तमान हिन्दी-भाषा प्राकृत से निकली है उसके शब्दों के। शैारसेनी आदि प्राकृत के भेदों से न सिद्ध होते देख दुराग्रह वश यह कहा करते हैं कि वर्त्तमान हिन्दी-भाषा अपभ्रंश नामक प्राकृत भाषा से निकली है। हम ऐसे विद्वानों और उनके वाक्यों के। 'बाबा वाक्यं प्रमाणं' माननेवाले शिष्यों के लिये कुछ अपभ्रंश प्राकृत के शब्दों के। उनके माने हुए संस्कृत के प्रकृति रूपों के साथ यहां उदाहृत करके सानुरोध उन से विचार करने की प्रार्थना करते और पूछते हैं कि क्या वे महात्मा यह बताने का परिश्रम उठावेंगे कि ये शब्द भाषातत्त्व और निरुक्त (Philology) के किस नियम के अनुसार अपनी प्रकृति से (वैयाकरणों की मानी हुई प्रकृति) से निकले हैं और क्या वे तीन काल में भी उन्हें उन उन संस्कृत शब्दों का विकार सिद्ध करने में कृतकार्य्य हो सकेंगे।

संस्कृत	प्राकृत
उद्‌भुत	ढक्करि
अपस्कंद	दडवड
शीघ्रं	वहिल्लं
कैातुक	कोड्ड
कुकट	घप्पलो
वद	बोह्ल
भय	द्रवक
असाधारण	सड्ढल
मूढ़	नलिग्र
तक्ष	छोह्ल

हमें यहां प्राकृत वैयाकरणों की कुछ अयोग्यता का परिचय देना आवश्यक ज्ञान पड़ता है। वह यह है कि उन वैयाकरणों ने जिस प्रकार अपने अपने कल्पित प्राकृत भाषाओं के। नियमों से जकड़ बंद किया है उस प्रकार वे अपभ्रंश के। नहीं कर सके। पहिले तो उन लोगों ने अपभ्रंश के। छुआ ही नहीं है। पर जिन्होंने उसे छूने की चेष्टा की है जैसे हेमचंद्रादि ने वे केवल विभक्ति और प्रत्ययों ही पर लिख कर रह गये हैं और 'शैारसेनीवत्' लिख कर ही अपना पीछा छुड़ाया है जिससे इस अनुमान की पुष्टि होती है कि उन लोगों ने अपभ्रंश शब्दों के अवगाहन करने में अपनी असमर्थता के। समझा था जो वास्तव में ठीक भी था। संस्कृत भाषा के अतिरिक्त यदि और किसी भाषा का पूर्ण रूप से अवगाहन किया गया तो वह पाली भाषा है जिसे उसके सुयोग्य वैयाकरणों और कोशकारों ने संस्कृत की समकक्ष भाषा बना दिया और पीछे से बौद्धों के। यह कहने का साहस दिलायाः—

सा मागधी मूलभासा नरायाआदि कप्पिका।
ब्राह्मणा चास्सुता लापा सुम्बुद्धा चापिमासिरे॥

अपभ्रंश भाषा जिसका हेमचन्द्र पूरा अवगाहन नहीं कर पाया वह अवश्य मारवाड़ की भाषा है जिसके उदाहरणों में उसने अपनी शैारसेनी आदि कल्पित प्राकृतों के कुछ शब्दों के। इधर उधर ठूस कर उसे कुछ अधिक क्लिष्ट कर दिया।

अब हम इसका विचार पाठकों ही पर छोड़ते हैं, वे ही विचार कर देखें, कि क्या वह कल्पित

प्राकृत जो व्याकरणों के सहारे बनती है कभी भारतवर्ष के किसी प्रान्त की बोलचाल की भाषा वा विद्वानों की भाषा थी। जिन लोगों ने उन उन व्याकरणों को पढ़ा है उन्हीं ने उस भाषा में भले ही पुस्तकें आदि लिखी हैं जैसा कि नाटकों में ग्रैार जैन-साहित्य में देखा जाता है। फिर जिनका प्रचार ही नहीं था उनसे अपनी भाषा का विकाश मानना भ्रम नहीं तो क्या है। हम इस बात को स्वीकार करते हैं कि कुछ इने गिने शब्द जैसे भुआल गाहा इत्यादि तुलसीदास के रामायण तथा अन्य काव्यों में मिलते हैं पर इसका कारण यह है कि तुलसीदासजी संस्कृत के पण्डित थे ग्रैार उन्होंने* नाटकादि को पढ़ा था ग्रैार काव्यपरम्परा की रीति पर रामायण को बनाया था। अन्य कवियों ने भी उन्हें अपने पूर्ववर्ती कवियों से लिया था।

यहाँ यह भी कह देना अनुचित न होगा कि हिन्दी कविता के प्रवाह के उद्गम संस्कृत ग्रैार प्राकृत काव्य हैं ग्रैार गद्य हिन्दी-भाषा का उद्गम लोकभाषा है। अतः काव्यों में प्राकृत शब्द मिलने से हम यह नहीं स्वीकार कर सकते कि हमारी हिन्दी-भाषा पर प्राकृत का प्रभाव पड़ा है। हाँ, यदि आप प्राकृत का अर्थ लें भिन्न भिन्न कालों में प्रचरित प्रजाजनों की भाषा तब भी यह कहना उचित न होगा कि उसका प्रभाव हिन्दी-भाषा पर पड़ा है वा पड़ सकता है। यह भले ही माना जा सकता है, ग्रैार यह मानना ठीक भी है, कि हिन्दी-भाषा अपने पूर्व की प्रचलित भाषाग्रों से निकली है। उन पूर्वप्रचरित भाषाग्रों के कुछ नमूने गैातमबुद्ध के उपदेशों, अशोक के शिलालेखों, तथा इधर चंद आदि ग्रन्थों में पाए जाते हैं।

—:०:—

* तुलसीदास के प्राकृत ज्ञान का प्रमाण यह है।
ये प्राकृत कवि परम सयाने। भाषा जिन हरि चरित बखाने॥

बुद्धघोष*।

परिचय।

संस्कृत साहित्य में जो स्थान सायण का है, पाली साहित्य में ठीक वही स्थान बुद्धघोष को प्राप्त है। उसका तथा उसके रचित ग्रन्थों का दक्षिणी (लंका, बरमा ग्रैार स्याम के) बैाद्धों में प्राचीन काल से बहुत अधिक आदर है। उन लोगों के धार्म्मिक ग्रैार नैतिक जीवन पर बुद्धघोष के लेखों का बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है ग्रैार वे लोग उसे देवतुल्य मानते हैं।

बुद्धघोष के असली नाम का अब तक पता नहीं चला है। "बुद्धघोष" एक व्यक्तिगत पदवी मात्र है जो उसे या तो बैाद्ध होने के समय या बाद में बुद्ध की शिक्षाग्रों का प्रचार करने के कारण मिली थी। इस प्रकार की व्यक्तिगत पदवियों अथवा उपनामों की प्रथा, बुद्ध के बाद कई सैा वर्षों तक, बहुत अधिक प्रचलित थी ग्रैार उन दिनों बुद्धप्रिय, बुद्धगुप्त, बुद्धमित्र, बुद्धभद्र ग्रैार बुद्धघोष, इन्द्रघोष, आर्य्यघोष ग्रैार मञ्जुघोष आदि नाम अधिकता से रक्खे जाते थे।

यद्यपि दक्षिणी बैाद्धों में बुद्धघोष का बहुत आदर है ग्रैार उन लोगों में उनके सम्बन्ध में अनेक दन्तकथाएं भी प्रचलित हैं, तथापि चीन, जापान, ग्रैार मंगोलिया के बैाद्ध उनके नाम से एक दम अपरिचित हैं! भिलसा ग्रैार मथुरा आदि स्थानों में अब तक जो शिलालेख पाये गये हैं उनसे मालूम होता है कि उस समय भारत के पश्चिमोत्तर प्रदेश में बुद्धघोष बैाद्ध-समाज का एक प्रमुख था ग्रैार लगभग पचास वर्षों तक समस्त भारत में वह बहुत आदरणीय रहा। चीनी यात्री फाहियान् जब सन् ४०५ से ४०९ के मध्य में पाटलीपुत्र गया था तो उस समय उसे वहाँ एक "विद्वान्

* इण्डियन एण्टिकेरी (The Indian Antiquary) के अप्रैल सन् १८९० के अङ्क के एक लेख के आधार पर।

ब्राह्मण" मिला था। कुछ लोगों का अनुमान है कि यह "विद्वान् ब्राह्मण" वही बुद्धघोष था। लंकावालों के कथनानुसार बुद्धघोष ने लंका के राजा महानाम के* राजत्वकाल में ग्रौर बरमा वालों के कथनानुसार बरमा के राजा व्यांगडैक के † समय में अपना धार्म्मिक जीवन आरम्भ किया था।

बरमावासियों में बुद्धघोष के संबंध में जो दन्त-कथाएं प्रचलित हैं उनसे मालूम होता है कि यह ब्राह्मण था ग्रौर विशुद्धिमार्ग नामक पुस्तक की,— जिसमें बुद्ध के सब अवतारों का पूरा विवरण है— रचना के लिए लंका भेजा गया था। सन् ३९७ के लगभग वह बहुत सी पाली पुस्तकें लंका से बरमा ले गया था। बरमा में बौद्ध-धर्म का पहले पहल उसी ने प्रचार किया था ग्रौर अन्त में भारतीय ब्राह्मणों के भय से उसने अपना अधिकांश जीवन भी वहीं बिताया था। इसके सिवा स्याम के कुछ बौद्धों का यह भी कथन है कि बुद्धघोष ने गौतम बुद्ध के निर्वाण के २३६ वर्ष बाद लंका में जाकर बौद्ध-धर्म का प्रचार किया था। लेकिन लंकावालों के कथनानुसार लंका में उसी समय महीन्द्र ने बौद्ध धर्म का प्रचार किया था। पहले वह भारत से बरमा गया था ग्रौर वहां से सन् ४०० के लगभग कुछ पुस्तकों की प्रतिलिपियां लाने के लिए लंका भेजा गया था। वहां तीन वर्षों तक रह कर उसने अनेक ग्रन्थों के भाष्य पाली भाषा में किये ग्रौर प्रति-लिपियां लीं। जब वह लंका से लैाटने लगा तब वहां के निवासियों ने बहुत सी बहुमूल्य वस्तुएं उनकी भेंट की थीं।

लेकिन लंकावासियों का मत इससे बहुत भिन्न है। वहां के बहुत प्राचीन ग्रौर मान्य ग्रन्थ महावंश में लिखा है—"राजा महानामन् के राजत्व-काल में जम्बूद्वीप (भारत) से लंका में एक विद्वान् आया था जिसका नाम बुद्धघोष था। राजा महानामन् ने उससे बुद्ध के बहुत से उपदेश संग्रह कराए ग्रौर लिखवाये थे।" दूसरी पुस्तक राजरत्नाकरी में लिखा है—"राजा महानामन् के समय में जम्बूद्वीप से बुद्ध-घोष आया था जिसने बुद्ध के २५८२५० उपदेशों में पाली भाषा में ३६०५५० उपदेश ग्रौर बढ़ाए थे।" राजावली नाम की इतिहास-पुस्तक में लिखा है कि महानामन् के पुत्र ने बुद्धघोष तथा एक ग्रौर बौद्ध को भारत से बुलवाया था ग्रौर वही लोग अपने साथ अनेक ग्रन्थ आदि लेते गए थे। लेकिन महावंश का जो अनुवाद टरनर (Hon. George Turnour) साहब ने किया है, उसमें बुद्धघोष का कुछ विस्तृत वृत्तान्त दिया गया है। उसमें जो कुछ लिखा है, उसका तात्पर्य्य यह है—"मगध देश में एक बहुत ही विद्वान् ब्राह्मण युवक रहा करता था। वह तीनों वेदों का ज्ञाता ग्रौर बहुत अच्छा वक्ता था। वह वास्तविक "ज्ञान" की प्राप्ति के लिए समस्त प्रदेश में घूमता घूमता अन्त में एक बौद्ध-विहार में पहुँचा। वहां उसकी भेंट महा-स्थविर रेवत से हुई। पहले रेवत ग्रौर उस ब्राह्मण में कुछ शास्त्रार्थ हुआ जिसमें वह ब्राह्मण हार गया। इसके बाद रेवत ने उस ब्राह्मण की विद्वत्ता ग्रौर योग्यता से प्रसन्न होकर उसे बौद्ध धर्म में दीक्षित कर लिया ग्रौर उसे "बुद्ध-घोष" की पदवी दी। इसके बाद उसने जम्बू द्वीप में "ज्ञानोदयन" नामक ग्रन्थ की रचना की ग्रौर "अभिधर्म" नामक ग्रन्थ की "धर्मसंगिनी" टीका पर कुछ लिखा। तदुपरान्त उसने पिटकत्रय की "परि-तत्त्वकथन" नामक टीका करने का विचार किया। उस पर रेवत ने उसे लंका जाकर महीन्द्र रचित सिंहली भाषा की "अथ्थकथा" वा टीका पढ़ने ग्रौर पाली भाषा में उसका अनुवाद करके उसके द्वारा संसार का उपकार करने की सम्मति दी। तदनुसार वह महानाम के समय में लंका आया। वहां वह अनुराधापुर के महा-विहार में रहने ग्रौर "अथ्थकथा" ग्रौर "थेरवाद" सुनने लगा। कुछ समय बाद उसने वहां के प्रधान पर अथ्थकथा का अनुवाद करने की अपनी इच्छा प्रकट की ग्रौर पुस्तकों की सहायता मांगी। प्रधान ने उसकी

* महानामन् सन् ४१० में लंका का राजा हुआ था।

† व्यांगडैक का देहान्त सन् ४१३ में हुआ था।

योग्यता की परीक्षा के लिए पहले उसे केवल एक ही गाथा दी और कहा कि यदि इसका ठीक अनुवाद करने में तुम सफलता प्राप्त कर लोगे तो तुम्हें और ग्रन्थ भी दे दिये जायँगे। वहाँ कुछ समय तक बहुत परिश्रम करके उस गाथा पर उसने विशुद्धि-मग्ग" (विशुद्धि-मार्ग) नामक प्रसिद्ध टीका तैयार की। टीका समाप्त कर चुकने पर जब उसने उसे पढ़ना चाहा तो देवताओं ने वह टीका लुप्त कर दी। इस पर उसने दूसरी टीका की; पर वह भी पहली की भाँति लुप्त हो गई। उसने फिर तीसरी टीका की। तीसरी बार टीका तैयार हो जाने पर देवताओं ने उसकी दृढ़ता से प्रसन्न होकर पहली दोनों टीकाएं भी उसे दे दीं। जब लोगों ने उन तीनों टीकाओं का मिलान किया तो उन्हें मालूम हुआ कि मानों वह तीनों एक दूसरे की नक़ल हैं। उन तीनों टीकाओं में कहीं एक अक्षर का भी फरक न था! इस प्रकार जब बुद्धघोष की विद्वत्ता विहार के अधिकारी को मालूम हो गई तब उसने बड़ी प्रसन्नता से उसे सब ग्रन्थ दे दिए। वहीं रह कर उसने सिंहली भाषा की अत्थकथा का पाली भाषा में बहुत उत्तम अनुवाद कर डाला। उसके अनुवाद और टीका का बड़े बड़े आचार्य्य आदर करते हैं। अपना उद्देश्य पूरा करके बुद्धघोष जम्बूद्वीप लैाट गया।" लेकिन यहां यह कह देना भी आवश्यक है कि उक्त अंश असली महावंश में नहीं है बल्कि उसके उस अंश में है जो बाद में तेरहवीं शताब्दी में बढ़ाया गया था।

बुद्धघोष की जीवनी में तीन बातें ऐसी विचारणीय हैं जिनपर विद्वानों का मत-भेद है। (१) (उसका) आरम्भिक जीवन, (२) लंका-यात्रा और (३) अन्तिम जीवन। उसके आरम्भिक जीवन के सम्बन्ध में लोगों में उतना मतभेद नहीं है जितना और बातों में। यह बात निर्विवाद सिद्ध है कि वह जन्म का ब्राह्मण था, बहुत अच्छा विद्वान् था और शायद बैाद्ध-धर्म्म का विरोधी भी था। युवावस्था में ही वह बैाद्ध हो गया था। कोई कोई विद्वान् उसे प्राकृत का भी अच्छा ज्ञाता और लेखक मानते हैं। कुछ लोग उसे बरमा का निवासी बतलाते हैं, लेकिन यह उनका भ्रम है*। एक विद्वान् के कथनानुसार वह भारत के ब्राह्मणों के भय से भाग कर बरमा चला गया था; लेकिन इस मत की पुष्टि के लिए और कोई प्रमाण नहीं मिलता। इसके सिवा उसके आरम्भिक जीवन के सम्बन्ध में अभी तक और कुछ पता नहीं चला है।

बैाद्ध होजाने के बाद बुद्धघोष लंका गया था। महास्थविर रेवत ने ही उसे लंका जाकर सिंहली भाषा सीखने और वहाँ से त्रिपिटक का अनुवाद कर लाने के लिए कहा था। वहीं उसने विशुद्धिमार्ग नामक भाष्य किया था। किसी किसी का कथन है कि विशुद्धिमार्ग नामक पुस्तक वहाँ पहले से ही तैयार थी; बुद्धघोष ने उसकी नक़ल की थी। लेकिन यह बात ठीक नहीं है। कहा जाता है कि भाष्य लिखने के लिए स्वयं भगवान् बुद्ध ने उसे लोहे की एक क़लम दी थी। बरमावालों के कथनानुसार बुद्धघोष ने ही लंका में बैाद्धधर्म्म का प्रचार किया था; लेकिन यह बात ठीक नहीं मालूम होती है, क्योंकि उससे पहले ही महिन्द वहाँ बैाद्ध-धर्म्म का प्रचार कर आया था और वहाँ उस धर्म्म के अनेक ग्रन्थ और अनुयायी वर्त्तमान थे। हाँ, यह सम्भव है कि बुद्धघोष ने वहाँ उस धर्म्म का प्रसार और अधिक किया हो।

लंका में बुद्धघोष ने विशुद्धिमार्ग नामक भाष्य के अतिरिक्त वहांवालों के लिए बुद्ध के असंख्य उपदेशों का संग्रह भी किया था। इसके सिवा वह लंका से पाली भाषा की अनेक पुस्तकें बरमा ले गया था और वहाँ उसने बैाद्ध धर्म्म और पाली भाषा तथा लिपि का प्रचार किया था।

उसके जीवन का अन्तिम भाग बरमा में बैाद्धधर्म्म का प्रचार करने में व्यतीत हुआ था। उसके

* बरमावालों को अब उनका भ्रम मालूम हो चला है और वहां के नवीन विद्वान् बुद्धघोष का जन्म-स्थान भारत ही मानते हैं।

बरमा पहुँचने के समय से वहाँवालों ने एक नया सम्वत् भी चलाया था, पर वह शायद अधिक दिनों तक नहीं चला। बरमा के बाद उसने स्याम देश में भी बौद्धधर्म्म का प्रचार किया था। उन्हीं दिनों में उसने और भी अनेक काम किये थे। लंका आने से पूर्व ही वह "ज्ञानोदय" और "अर्थशालिनी" नाम की दो पुस्तकें लिख चुका था। लंका से वह कात्यायन का पाली व्याकरण भी ले आया था जिसका उसने बरमी भाषा में अनुवाद और भाष्य किया। बुद्धवंश पर जो टीका हुई है वह भी बुद्धघोष की ही बतलाई जाती है। बरमा में जो मनुस्मृति है उसके विषय में भी यही कहा जाता है कि उसे बुद्धघोष लंका से लाया था; लेकिन उस स्मृति में इस सम्बन्ध में कुछ भी नहीं लिखा है।

बुद्धघोष का बिलकुल ठीक समय भी अभी तक निश्चित नहीं हो सका है इस विषय में विद्वानों का बहुत मतभेद है। कोई तो उसे ईसा से ३०० वर्ष पूर्व तक ले जाते हैं और कोई कोई उसे ईसा के ६०० वर्ष बाद तक का बतलाते हैं। कुछ लोग तो उसे और भी आगे पीछे घसीट ले जाते हैं; लेकिन वह सम्भवपर नहीं है। अधिकांश प्रमाण इसी बात के मिलते हैं कि वह चौथी शताब्दी के अन्त और पाँचवीं शताब्दी के आरम्भ में जीवित था।

—:o:—

गुजराती समाचार-पत्र।

[ले० पंडित श्रीसाँवलजी नागर]

पाश्चात्य देशीय अँग्रेज़ विद्वानों के परिचय से, विद्या की अपूर्व उन्नति के कारण, हम भारतवासियों को जो जो अपूर्व लाभ हुए हैं उनमें सर्वोत्तम, सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वप्रिय लाभ मुद्रण-कला का अन्वेषण और उसका प्रचार है। जिस प्रकार प्राचीन आर्यों की विद्वत्ता उनके तत्त्वज्ञान के ग्रंथों से स्मरणीय है, बौद्ध-राज्य का अस्तित्व उसके स्तूपों और भू-गर्भ-स्थित प्राचीन मूर्तियों से जाना जाता है, यवनों का नामस्मरण उनके मक़बरों और बड़े २ राज-प्रासादों से अविचल है उसी भाँति अँग्रेज़ी-राज्य का अस्तित्व भारत के इतिहास में छापे की कला के प्रचार से स्मरणीय रहेगा। इतिहास-विज्ञ महाशयों को भली भाँति विदित है कि इस कला के अन्वेषण का सौभाग्य अँग्रेज़ों को नहीं वरन् जर्मनीवालों को प्राप्त है। सोलहवीं शताब्दी में जर्मनी प्रदेश के गटनबर्ग ने इस कला को निकाल उसे परिमार्जित किया और वहीं से वह योरोप में प्रचलित हुई। अँग्रेज़ों के संसर्ग से इस देश में भी इसका शुभागमन हुआ। जब से इस कला का आगमन हुआ है, आर्य प्रजा की स्थिति पलट गई है। इसमें सन्देह नहीं, कि जिन अँग्रेज़ों के उद्योग से इसका यहाँ प्रचार हुआ, प्रत्येक भारतवासी उनके कृतज्ञ हैं।

अँग्रेज़ी भाषा में "प्रेस" शब्द के दो अर्थ हैं, मुद्रण-कला और समाचार पत्र। मुद्रण-कला के आविष्कर्त्ता गटनबर्ग थे। योरोप, अमेरिका और एशिया आदि की बुद्धि-शक्ति के परिमार्जित करने और उसे सर्वोपरि सुशिक्षित बनाने में इस कला ने एक अद्भुत शक्ति प्रदर्शित की है। जर्मनी में केवल धर्मग्रन्थों के छापने के अभिप्राय से इस कला का प्रारम्भ हुआ; परन्तु अन्यान्य भूभागों में, राज्य-सम्बन्धी आलोचनाओं को सबके सामने प्रगट करने की इच्छा से इस कला का प्रचार हुआ जिसका वर्त्तमान स्वरूप समाचारपत्र हैं। इन समाचारपत्रों की उत्पत्ति; जिनमें राज्य-सम्बन्धी, सर्वसाधारण की आवश्यकताओं को प्रगट करनेवाले और जन-समाज की उन्नति एवं अवनति-सम्बन्धी समाचार हों, योरोप में हुई है।

सब से प्रथम इङ्गलेंड देश में एक समाचार-पत्र प्रकाशित किया गया जिसमें केवल समाज-सुधार-सम्बन्धी ख़बरें रहती थीं। इसके उपरान्त एक दो पत्रों में राज-कर्मचारियों की आलोचनाएं

भी होने लगीं; परन्तु राज-दंड के भय से, इन्हें बड़ी २ कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। यद्यपि उस देश में स्वतंत्रता देवी की पूर्ण कृपा थी तथापि सन् १८८१ के पूर्व मुद्रण-कला को पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त न थी। परन्तु वर्त्तमान समय की तरह कार्य-करने वाले प्रेसों का प्रचार इङ्गलैंड देश में सन् १७०४ से १७४० ई० तक में हुआ। इस रीति के उत्पादक स्वफ्टि, डीफो, बोलिङ्ग्ब्रुक, और पलटनी नामक सज्जन थे। यही कार्य फ़ान्स देश में सन् १७८९ से और जर्मनी में सन् १७९६ से प्रारम्भ हुआ। उपर्युक्त सज्जनों के प्रयत्न का लाभ सबसे प्रथम "लण्डन टाइम्स" को हुआ। वाल्टर नामक एक सज्जन ने सन् १७८५ में "डेली यूनीवर्सल रजिस्टर" नामक पत्र निकाला; परन्तु कई कारणों से तीन वर्ष के पश्चात् इसका नाम बदल देना पड़ा और उसका नया नाम "दी टाइम्स" निश्चय हुआ जो आज तक प्रसिद्ध और प्रचलित है। ५० वर्ष लों यह केवल एक साधारण समाचारपत्र था, परन्तु सन् १८३७ से इसकी स्थिति का परिवर्त्तन आरम्भ हुआ। यहाँ तक कि आज कल यह एक जग-प्रसिद्ध समाचारपत्र हो रहा है। इस पत्र के कई वर्ष के लगातार परिश्रम के बाद कई समाचारपत्रों का जन्म हुआ, और आज दिन केवल ग्रेट ब्रिटेन में ही—जो भारतवर्ष से ¼ हिस्सा छोटा है, ३१८५ दैनिक और साप्ताहिकपत्र प्रकाशित हो रहे हैं! सम्पूर्ण योरोप में इस समय २५०० के लगभग तो केवल दैनिक पत्र निकलते हैं।

भारतवर्ष में इस कला का प्रवेश ईस्ट इण्डिया कम्पनी के समय से हुआ था। सबसे प्रथम धर्मग्रंथ 'बाइबिल' के प्रकाशित करने की अभिलाषा से, अँग्रेज़ों ने, सन् १७८६ ई में बंगाल प्रदेश के श्रीरामपुर नामक नगर में एक प्रेस खोला था। पहिले पहल इसमें अँग्रेज़ी भाषा ही में कार्य होता था। लार्ड वेलस्ली के सुशासन में, सरकार के अधीनस्थ "दी वर्ल्ड"; "कलकत्ता गज़ेट" आदि इसी प्रेस से प्रकाशित किये जाते थे। उस समय मद्रास प्रान्त में इस कला का प्रवेश हुआ था कि नहीं यह अज्ञात है। परन्तु बम्बई प्रान्त में "बाम्बे हेरल्ड", "कुरियर", "गज़ेट" इत्यादि पत्र निकलने लगे थे।

सन् १७१२ के पूर्व गुजराती और हिन्दी (नागरी) अक्षरों का प्रेसों में कहीं पता भी न था। सन् १६७० ई० में "दिव" बन्दर के भीमजी पारिख नामक एक वैश्य ने बम्बई के गवर्नर के द्वारा एक पत्र डाइरेकृरों के बोर्ड को भेजा, जिसमें यह लिखा हुआ था कि यदि सरकार नागरी अक्षरों को ढाल दे तो वह एक प्रेस खोलकर कार्य करने को तैयार हैं। उस पत्र में यह भी प्रार्थना की गई थी कि सरकार किसी सुयोग्य मनुष्य को भेजकर इस कार्य में सहायता करे। इसके अनुसार कोर्ट आफ़ डाइरेकृरों ने ८००) वार्षिक वेतन पर मि० हेनरी हिल को एक मशीन, थोड़े अँग्रेज़ी अक्षर और कुछ और सामान के सहित भारतवर्ष में भेजा। परन्तु मि० हिल अक्षर ढालना न जानते थे अतएव महाशय भीमजी को आरम्भ में हताश होना पड़ा। भीमजी पारेख ने पुनः कोर्ट आफ़ डाइरेकृर्स की सेवा में निवेदनपत्र भेजा और सन् १६७८ ई० में डाइरेकृरों ने एक (अक्षर खोदने एवं ढालने के कार्य में) चतुर व्यक्ति को भेजा जिसकी सहायता से भीमजी ने नागरी अक्षर बना कर ढाले। इसके पश्चात् सन् १७९० ई० में रुस्तमजी खुरशेदजी नामक एक पारसी सज्जन ने अँग्रेज़ी अक्षरों में पञ्चाङ्ग प्रकाशित किया। इसी समय "बम्बे कुरियर" के सर्वस्व मि० डगलास निकलसन ने छः महाराष्ट्रों को कम्पोज़ करना सिखलाया और यहीं से देशी कम्पोज़िटरों की वृद्धि प्रारम्भ हुई।

जिस तरह नागरी अक्षरों के बनानेवाले भीमजी पारिख थे उसी भाँति गुजराती अक्षरों के बनानेवाले पारसी जाति के फ़रदुनजी मर्जबान थे। उन्होंने गुजराती अक्षर बना कर सन् १८१२ में 'समाचार' नामक प्रेस खोला। इसी प्रेस से सन् १८२२ ई० से "बम्बई समाचार" नामक पत्र भी निकलने लगा और अभी तक बराबर निकल रहा है। इसके बाद सन् १८३० ई० में सरकार की ओर से भी एक प्रेस

खोला गया। धीरे २ नागरी, गुजराती और अँग्रेज़ी प्रेस खुलने लगे। यहाँ तक कि सन् १८६७ में इस प्रान्त में प्रेसों की संख्या २५ थी और आज से दो वर्ष पूर्व इसकी संख्या १५० के ऊपर हो गई थी।

गुजराती तथा नागरी अक्षरों को चित्ताकर्षक बनानेवाला टामस ग्राहम और सूरत का जीवन नामक एक लोहार था। सन् १८३५ में टामस ग्राहाम ने, अक्षर खोदने और ढालने की युक्ति जीवनदास लोहार को बतलाई। १२ प्वाइंट के सादे पाइका अक्षर जो बम्बई की कई फ़ाउंडरियों में बनते हैं, इसी जीवनदास के परिश्रम का फल हैं।

सीसे के अक्षर बनने के पूर्व भारतवर्ष में शिला-छाप द्वारा पुस्तक, पञ्चाङ्गादि छापने की रीति प्रचलित थी। सबसे प्रथम सरकारी फ़रमान, सर्क्यूलर, नोटिस इत्यादि इसी शिला द्वारा छपते थे। पाश्चात्य देशों में प्रेसों की स्थापना पुस्तकों के प्रकाशित करने की अभिलाषा से हुई परन्तु इस देश में समाचारपत्रों की इच्छा से इसकी स्थापना हुई।

बम्बई प्रान्त का देशी भाषा का सबसे पुराना पत्र "बम्बई समाचार" है। सन् १८२२ में इसका जन्म हुआ। यह पत्र सन् १८३२ में दैनिक होकर, कई कारणों से १८३३ में साप्ताहिक हुआ; परन्तु गुजराती-भाषा-भाषियों के उत्साह और उद्योग से पुनः सन् १८५५ में दैनिक हो गया और अभी तक सर्वोत्तम दैनिकों में इसकी गणना है। गुजराती के प्रसिद्ध दैनिक "जामेजमशेद" (जो पायनियर के आकार से कुछ कम नहीं है) का जन्म सन् १८३१ में हुआ था। पहले यह साप्ताहिक था किन्तु भाषा-प्रेमियों के उत्साह से सन् १८५३ से दैनिक हो गया है। पारसी समाज का यह मुख्य पत्र है। यद्यपि हिन्दू-समाज-सुधार का यह उपदेशक है तथापि पारसियों के समाज-सुधार और नेशनल कांग्रेस के बिलकुल विरुद्ध है। और यही कारण है कि हिन्दु और यवन-समाज में इसका आदर कम है। इसी प्रकार सन् १८५० से सन् १८८० तक "दैनिक चाबुक" "व्यापार समाचार" "भीमसेन" "अख़बार सौदागर" आदि कई दैनिक पत्र निकले परन्तु कई कारणों से "अख़बार सौदागर" को छोड़ सब बन्द हो गये। हिन्दी-भाषा-भाषियों को यह सुन कर बड़ा हर्ष होगा कि गुजराती भाषा में सन्ध्या समय भी पत्र निकलते हैं। इस समय सन्ध्या समय निकलनेवाले दैनिकों में "साँझ वर्त्तमान" सर्वश्रेष्ठ है। कुछ काल तक "पारसी" भी सन्ध्या समय प्रकाशित होता था परन्तु अब फिर प्रातःकाल निकलता है। इस समय राष्ट्रीय विषयों की आलोचनाओं के लिये "बम्बई समाचार" सबसे अग्रगण्य और सर्वोत्तम है। समाज सुधार के लिये "पारसी" प्रसिद्ध है। दूसरे दो दैनिकों की कोई ख़ास नीति (Policy) नहीं है। वे हर एक विषयों की कुछ कुछ आलोचनाएँ करते हैं। यह सब पत्र पारसियों के अधीन हैं। शोक है कि हिन्दु-समाज से अभी तक एक भी दैनिक नहीं निकलता। अब चारों ओर से गुर्जर प्रेमी उद्योग कर रहे हैं। आशा है; परमात्मा उनकी अभिलाषा शीघ्र पूरी करेंगे।

गुजराती भाषा के साप्ताहिक पत्रों में सब से प्राचीन "रास्तगोफ़ार" है। इसका जन्म, वयोवृद्ध महात्मा दादाभाई नौरोजी के सम्पादकत्व में सन् १८५१ में हुआ है। इसके एक ही वर्ष के बाद, साहित्य-प्रेमी कृष्णदास जी ने गुर्जर भाषा के प्रसिद्ध सेवी मंगलदास नथ्थूभाई तथा लक्ष्मीदास खीमजी की सहायता से "सत्यप्रकाश" नामक पत्र प्रकाशित किया। सन् १८६० ई० में उपर्युक्त दोनों पत्र एक कर दिये गये। जिस प्रकार "इन्दुप्रकाश" के संचालक भारत-रत्न मि० तैलंग, मि० रानाडे, मि० चन्द्रावरकर आदि थे उसी प्रकार "रास्तगोफ़ार" के संचालक मि० दादाभाई नवरोजी, फ़रदूनजी, सोराबजी शापुरजी, काब्राजी इत्यादिक महान् पुरुष-रत्न थे। सन् १८८० तक इस की गणना सर्वोत्तम पत्रों में थी परन्तु काङ्ग्रेस की नीति के विरुद्ध होने के कारण इसकी महत्ता और उपयोगिता कम हो गई और इसकी ग्राहक-संख्या भी घट गई। "सत्य-प्रकाश" के बाद "सत्यदीपक" नामक पत्र भी सन् १८६२ में निकाला गया, परन्तु गुर्जर-साहित्य-तत्वज्ञ श्री-

युत मोहनलाल ग्रैार श्रीमान् महीपतरामजी के संचालक रहते हुए भी, दैवयोग से यह पत्र दो वर्ष के बाद बन्द हो गया। इसके बाद, सन् १८६२ में "खोजादोस्त" सन् १८७० में "आर्य्यमित्र" सं० १८८२ में "यज़दांदोस्त" सं० १८५८ में "पारसीपंच" "लिबर्टी" आदि कितने ही पत्र निकले परन्तु धीरे धीरे सभों का अन्त हो गया। तो भी गुर्जर-भाषा-भाषी हताश न हुए वरन् उद्योग करते ही गये। सं० १८८० में प्रसिद्ध "गुजराती" का जन्म हुआ। राष्ट्रीय आलोचनाओं के साथ साथ सर्वसाधारण की अभिलाषा पूर्ण करने का प्रयत्न करना, जैसा कि कांग्रेस का मुख्य नियम है इस पत्र का मुख्य उद्देश्य था ग्रैार अभी तक है। इसी भांति सं० १८८२ में "कयसरे हिन्द" सन् १८६० में "गुजरात मित्र" नामक कई पत्र निकले जो अभी तक विख्यात हैं ग्रैार जिनकी ग्राहक-संख्या भी यथेष्ट है।

बम्बई प्रान्त के अँग्रेज़ी समाचारपत्रों में सबसे पहला नम्बर "बाम्बे हेरल्ड" का है। इसका जन्म १७८९ में हुआ था। इसके बाद क्रम से सन् १७९० में "बाम्बेकुरियर" ग्रैार सं० १७९१ में "बाम्बे गजेट" प्रकाशित हुए थे। इसके बाद "बाम्बे" "क्रानिकल" "अरगस" "इडीस" "टाइम्स आफ़ इंडिया" आदि निकलने लगे। टाइम्स का जन्म सन् १८३८ में हुआ है। यह भारतवर्ष में सर्वप्रसिद्ध उत्तम पत्र है। बम्बई प्रान्त के गुजराती ग्रैार अँग्रेज़ी समाचारपत्रों का उपर्युक्त अल्प इतिहास हैं। इससे मालूम होता है कि कितने ही पत्र दैनिक से साप्ताहिक हुए, कितने ही बंद हो गये, कितने ही के संचालकों को तरह तरह की असुविधाएं झेलनी पड़ीं, घाटे सहने पड़े, अपमानित भी होना पड़ा, परन्तु वे निरुत्साही, निरुद्योगी एवं कर्त्तव्यच्युत न हुए। गुर्जर-भाषा-सेवियों ने सब कुछ सहन कर, अपनी मातृ-सेवा से मुख न मोड़ा, ग्रैार यही कारण है कि वे अपने भाषा भांडार की पूर्ति में सफली-भूत हुए। परन्तु हिन्दी-साहित्य-सेवियों में यह बात नहीं है। ज़रा ज़रा सी बातों पर निरुत्साही होना, किसी निस्वार्थी-साहित्य-सेवी से ईर्ष्या कर उसे अपमानित करने का प्रयत्न करना, हानि देख कार्य से विमुख होना आदि तो इनके लिये बाएं हाथ का खेल है। जिस सर्व-गुण-आगरी नागरी के किसी समय संसार की राष्ट्रभाषा होने की सम्भावना है, जिस नागरी के पक्षपाती ही नहीं वरन् सेवक गुजराती, मराठी, बंगाली, पंजाबी एवं महात्मा कृष्णस्वामी ऐय्यर सरीखे भारत-रत्न मद्रासी भी हों, उस लिपि में सर्व-गुण-सम्पन्न एक दैनिक पत्र भी न हो, यह कितने महान् दुःख की बात है। अंत में मेरी हिन्दी-प्रेमियों से भारतेन्दु श्री हरिश्चन्द्र जी के आज्ञानुसार यही प्रार्थना है कि—

> उठहु उठहु सब भ्रातृ-गण,
> उठहु मिटावहु सूल।
> निज भाषा उन्नति करहु,
> प्रथम जो सब को मूल ॥ १ ॥
> काव्य कला शिक्षा अमित,
> ज्ञान अनेक प्रकार।
> सब देशन सों लै करहु,
> भाषा मांहि प्रचार ॥ २ ॥
> प्रचलित करहु जहान में,
> निज भाषा करि यत्न।
> राज काज दर्बार में,
> फैलावहु यह रत्न ॥ ३ ॥

—:o:—

मनोविकारों का विकाश।

ईर्षा

जैसे दूसरे के दुःख को देख दुःख होता है वैसे ही दूसरे के सुख वा भलाई को देख कर भी एक प्रकार का दुःख होता है जिसे ईर्षा कहते हैं। ईर्षा की उत्पत्ति कई भावों के संयोग से होती है इससे इस का प्रादुर्भाव बच्चों में कुछ देर में देखा जाता है ग्रैार